आधुनिक गीति-काव्य

●

सच्चिदानंद तिवारी एम० ए०

कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद बम्बई

समर्पण

जिनकी कृपा ने मेरे लिए साहित्य का प्रवेश-द्वार उन्मुक्त किया

जिनके सम्पर्क ने अनंत भाव-राशि के दर्शन कराये

जिनके शब्दों ने प्राणों को शक्ति, बुद्धि को प्रेरणा दी……

उन्हीं गुरुवर श्रद्धेय

श्री विश्वम्भर 'मानव' को

सादर समर्पित ।

आभार

सन् १९४५ की बात है। उन दिनों मैं हिन्दू यूनिवर्सिटी के हिंदी विभाग में एम० ए० का विद्यार्थी था। मुझे परीक्षा के निमित्त निबंध के स्थान पर एक थीसिस लिखनी थी। इसके लिए बीसवीं सदी के गीति-काव्य को मैंने अपना विषय बनाया। थीसिस श्रद्धेय पं० नंददुलारे जी वाजपेयी की देख-रेख में लिखी जा रही थी; अतः मेरे बोध का बृहत् अंश उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुआ है और यदि वह इस पुस्तक में भी रह गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

'गीति-काव्य' की रचना के निमित्त मुझे अनेक पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ा, साथ ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता लेनी पड़ी। इसके लिये मैं उन सभी लेखकों का कृतज्ञ हूँ। श्रद्धेय डा० श्री कृष्ण लाल का मैं अधिक आभारी हूँ जिनकी पुस्तक से मुझे अत्यधिक सहायता मिली है। परममित्र बाबू गुलाब सिंह जी एम० ए० एल एल० बी० और शितिकंठ जी मिश्र एम० ए० का उपकार भी मुझ पर थोड़ा नहीं है जिनकी सुरुचि से मुझे अत्यधिक लाभ हुआ है। अपने प्रिय शिष्य श्री जगदीशसहाय के परिश्रम को भी मैं कभी नहीं भूल सकता जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस काम में सहायता दी है।

समालोचना का कार्य अत्यन्त गम्भीर है और अत्यधिक बुद्धि-साध्य भी; अतः गाम्भीर्य और बुद्धि की न्यूनता के साथ ही इसमें त्रुटियों का समावेश हो ही जाता है। यहाँ मेरे जैसे नवागन्तुक के लिये भटकना

स्वाभाविक ही है। फिर भी मेरा विश्वास है कि जहाँ तक बन पड़ा है, सतर्कता का साथ मैने कभी नहीं छोड़ा।

मैने कवियों के केवल गीतिकार रूप की विवेचना की है, अस्तु पाठकों से निवेदन है कि वे यहाँ केवल इतना ही खोजें। कुछ ऐसे भी कलाकार होंगे जिनका नाम मेरे अज्ञान वश इस कृति में न आ सका होगा, या उनकी रचनाओं पर अधिक न लिखा जा सका होगा। मैं ऐसे व्यक्तियों से इसका विश्वास दिलाते हुये क्षमा प्रार्थना करता हूँ कि भविष्य में अवसर आते ही यह त्रुटि दूर कर दी जायगी।

—सच्चिदानंद तिवारी

क्रम

परिभाषा और विकास

साहित्य और संगीत का अटूट सम्बन्ध है। दोनों का जन्म मानव-हृदय की रागात्मिका वृत्ति के फलस्वरूप होता है। काव्य पर छन्दों का बन्धन है और गीतों पर राग-रागिनियों का। भारतीय साहित्य में यह सम्बन्ध इस सीमा तक पहुँच चुका है जहाँ एक के बिना दूसरा अपूर्ण ज्ञात होता है। संगीत से हीन साहित्य हो सकता है और साहित्य से हीन संगीत भी; परन्तु ऐसी अवस्था में दोनों के दोनों अधूरे से रह जाते हैं। छन्द के बन्धन को तोड़ कर चलने वाले कवि बहुत कम हैं और उनसे भी कम उन गायकों की संख्या है जो साहित्यहीन संगीत की पूजा करते हैं। इस संयोग के लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि सरस्वती के एक हाथ में पुस्तक है तो दूसरे में वीणा।

साहित्य रचना को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—गद्य और पद्य। प्रथम अंग ज्ञान के विस्तार के लिए अनुकूल है और द्वितीय में भावों का प्रभावोत्पादक प्रकाशन होता है। यही पद्य रचना जब संगीतमय हो जाती है तो गीतों की उत्पत्ति होती है जहाँ भावों का रागमय विकास होता है। अतः गीति काव्य को संगीत की चरम सीमा मानते हैं। गीत मुक्तकों के वर्ग में आते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार भी वही कविता जो वाद्य-यंत्रों के साथ मिलाकर गाई जाती हो या गाई जा सके गीत कहलाती है।

LYRICAL POETRY : The poetry which can be sung or can

be supposed to be sung to the accompaniment of a musical instrument.—ENCYCLOPAEDIA BRITAINICA, 14TH VOLUME.

गीतो से अंशतः भिन्न प्रगीत होते हैं जो आधुनिक हिन्दी युग में पूर्णतया विकसित हुए हैं। प्रगीत स्वानुभूति निरूपिणी कविता के वर्ग में आते हैं जिनमें कवि के स्वीय विचारों, भावों और प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति होती है, यद्यपि तुक और संगीत की उपस्थिति भी वांछित है।

गीतों के विषय होते हैं छोटे रमणीय प्रसंग जिन्हें लेकर कवि के हृदयोद्गार व्यक्त होते हैं। प्रत्येक गीत स्वतः पूर्ण तथा निरपेक्ष होता है जिसमें चेतना के रूप में कवि की आत्मा झलकती दिखाई देती है। इनमें ऐसी कथा का बहिष्कार किया जाता है जिसमें विवरण हो और उग्र तथा कर्कश भावों का सन्निवेश भी नहीं होता। यहाँ सरसता और मधुरता के साथ साथ कोमलता भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। गेय पदों की कोमल भावना एक पद में पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है। 'प्रसाद' जी के मतानुसार गीतों में छोटी छोटी भावनाएँ एक धारा में केन्द्रित रहती हैं। जहाँ अंतः सौन्दर्य व्यक्त करना होता है वहाँ प्रबन्ध-काव्य की समस्त शक्तियाँ असफल हो उठती हैं और अनुभूतियों का सफल प्रकाशन गीत-काव्य ही कर पाता है; अतएव गीतों में प्रेम, विरह आदि विभिन्न भावों की वेगपूर्ण व्यंजना दिखायी देती है। इनमें जीवन का कोई एकान्त क्षण होता है और ये एकान्त में गाने योग्य होते हैं।

गीत संगीत-प्रधान काव्य है जिसमें कवि अपनी रुचि के अनुसार छन्द-प्रयोग करता है। संगीत छन्द के कारण उत्पन्न होता है। शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार क्रमबद्ध होता है कि संगीत विशेष उत्पन्न हो जाता है। इस विषय पर पं० सुमित्रानन्दन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में इस प्रकार अपना मत प्रकट किया है—"राग का अर्थ आकर्षण है।

यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते हैं, हमारा हृदय उनके हृदय से मिलकर एकभाव हो जाता है। जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध होते हैं उसी प्रकार दूसरी ओर राग के आकाश में पक्षियों की तरह स्वतंत्र भी होते हैं। जहाँ राग की उन्मुक्त स्नेहशीलता और व्याकरण की नियमवश्यता में सामञ्जस्य रहता है वहाँ शब्दो का अंग-विन्यास तथा मनोविकास स्वाभाविक और यथेष्ठ रीति से होता है।"

गीतो के लिए ऐसी भाषा आवश्यक है जिसके शब्दों में वह शक्ति हो जो पाठक या श्रोता की आँखों के समक्ष भाव-चित्र खड़ा कर सकें। ऐसी भाषा को चित्र-भाषा कह सकते हैं। समर्थ भाषा के अतिरिक्त कुशल छन्द व्यवहार भी आवश्यक है क्योंकि संगीत का तत्व पूर्णतया छन्दो पर निर्भर रहता है। कविता और छन्द का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि वह स्वभाव से ही छन्द में लय हो जाती है। यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि "कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कंपन"।

संस्कृत का संगीत हिन्दी-संगीत से भिन्न छन्दों में प्रवाहित होता है। "वह जिस तरह हिल्लोलाकार मालोपमा में प्रवाहित होता है उसी तरह हिन्दी का नहीं; वह लोल लहरों का चंचल कलरव, बाल झंकारों का छेकानुप्रास है। हिन्दी का संगीत, स्वरों की रिमझिम में बरसता, छनता, बुदबुदों में उबलता, छोटे छोटे उत्सों के कलरव में उछलता, किलकता हुआ बहता है।" इस संगीत के लिए केवल मात्रिक छन्द ही उपयुक्त है। वर्णवृत्त पुराने हो गए हैं और उनके प्रयोग में एक प्रकार की शिथिलता आ जाती है।

बंगला का संगीत आलाप प्रधान होने से अनियन्त्रित है। अतः बंगाली छन्द भी हिन्दी कविता के लिए सम्यक वाहन नहीं हो सकते।

काव्य भाषा का माधुर्य राग में रक्षित रहता है और राग को तुक से शक्ति मिलती है। अन्त्यानुप्रास से ही नवीन शक्ति लेकर राग की शक्ति काव्य को संगीतमय बना देती है। अतः गीतों के लिए तुक की अधिक महत्ता है। भाषा तुक की पुनरावृत्ति से रागमय हो जाती है और छन्द राग भी इसी के अनुकूल रहता है। जहाँ भाषा और छन्द के संगीतों में मैत्री नहीं होती वहाँ छन्द का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

पाश्चात्य समालोचकों ने कविता को दो वर्गों में रक्खा है। स्वानुभूति निरूपिणी और वाह्यार्थ निरूपिणी (subjective and objective)। प्रथम वर्ग में कवि को अनुभवों से काव्य प्रेरणा प्राप्त होती है और उन्हीं की अभिव्यक्ति उसका लक्ष्य होता है। दूसरे वर्ग की कविताओं में वह संसार के भिन्न भिन्न व्यापारों को देखता है और उनकी अभिव्यक्ति करता है। गीतों को भाव अनुप्राणित करते हैं। ये भाव प्रेरणा के भाव से दबकर एक साथ ही फूट निकलते हैं, अतः गीतों में स्वाभाविक हार्दिकता बनी रहती है। भावों के भार के कारण इन गीतों में एक-सूत्रता ही नहीं अपितु सुगठित एकता भी रहती है जिससे समस्त कविता में एक अन्विति के दर्शन होते हैं। यह प्रेरणा बहुधा बाहर से आती है जिसके कारण कवि का समस्त अन्तर्वाह्य झंकृत हो उठता है। प्रत्येक गीत की रचना उपरिलिखित अन्तर्ज्वाला के फलस्वरूप होती है। इस ज्वाला की तीव्रता और वेग प्रत्येक कवि की प्रकृति के अनुसार होता है। इसका विस्फोट क्षणिक और स्थायी होता है। अतः गीत छोटे होते हैं और उनका प्रकाश उल्का की भाँति होता है।

गीत की विशेषता यह है कि उसकी उत्पत्ति शुद्ध कवि-चेतना के फलस्वरूप होती है, उसमें किसी दूसरी चेतना का योग नहीं होता और गीत तथा कविता पर्यायवाची शब्द हैं।

Lyrical poetry is nothing than the other name for poetry itself......'Jouffroy'

गीत-कविता और कुछ नहीं, कविता का ही दूसरा नाम है और इसमें काव्य काल का सबसे सुन्दर और उच्च अंश वर्तमान रहता है।

'लिरिक' का स्थान स्वानुभूति कविता के अन्तर्गत है। इसे लोग बहुधा विवाह शादी के अवसर पर या भगवान की प्रार्थना के निमित्त गाया करते थे। आगे चलकर लिरिक का प्रयोग केवल ऐसी कविताओं के लिए होने लगा जिनमें कवि का भावोन्मेष अधिक व्यक्तिगत होता है। अब भी लिरिक में संगीत की प्रधानता होती है; चाहे इसे बाजे के साथ मिलाकर न गाया जाय, फिर भी शब्दों का मधुर संगीत रहता ही है। 'लिरिक' के लिए हिन्दी में प्रगीत शब्द का व्यवहार किया जाता है।

'हडसन' के विचार से उच्चकोटि के गीत के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कोई उदात्त भावना हो, उसे भावना की सुन्दरता के साथ विकसित किया गया हो, उसकी भाषा और शब्दचित्र केवल स्पष्ट और सुन्दर ही न हों, उपयुक्त भी हों। शुद्ध प्रगीत में केवल एक भावना का, एक मानसिक दशा (Mood) का चित्र रहता है जो पाठक पर प्रभाव डालने में समर्थ होता है।

'ड्रिंकवाटर' प्रगीत को ही वास्तविक कविता मानते हैं क्योंकि इसमें किसी अन्य शक्ति का मेल नहीं रहता, केवल काव्य-शक्ति ही पाई जाती है। यहाँ श्रेष्ठतम शब्द श्रेष्ठ क्रम से सजाए जाते हैं। इसके लिए कवि को प्रयास करने की आवश्यकता नहीं। इन्हें पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि की भावना और अभिव्यक्ति का संतुलन कितनी सुन्दरता से हुआ है। भावना शब्दों के एक निश्चित क्रम से विकसित होती है। कवि-कल्पना की पूर्णता तथा उसकी संतुलित अभिव्यक्ति, यही गीत काव्य का उच्चतम रूप है। इनमें एक गम्भीरतम भावात्मक अनुभूति रहती

है और इनका उद्देश्य होता है मानव हृदय की अनुभूतियों को स्पष्ट करना, उसके सुख दुख को पाठक के समक्ष रखना।

कल्पना के आनन्द का अनुभव जितने ही उदात्त रूप में किया जायगा और उसकी व्यंजना में जितना सौन्दर्य रखा जायगा उतनी ही सुन्दर कविता होगी। गीतों में कल्पना का वैशिष्ट्य सुन्दरतम शब्दों में व्यक्त होता है। प्रगीतों में दो बातें देखने की हैं—जीवन की घनी अनुभूति और भावों की पूर्णता। यहाँ भावना स्वच्छन्द रहती है; अतः ऐसा न सोचना चाहिए कि इसकी अभिव्यक्ति स्वच्छन्द छन्दों में ही हो सकती है। नियमबद्ध छन्द इसके लिए अधिक उपयुक्त हैं; क्योंकि छन्दों का बन्धन न रहने से प्रभाव की तीव्रता बिखर जाती है।

ऐसे काव्य की परीक्षा किसी भी मत या विश्वास के आधार पर नहीं की जा सकती और न तो विषय के आधार पर ही की जा सकती है, क्योंकि एक ही विषय पर अनेक गीत रचे जा सकते हैं। कविता के विषय थोड़े होते हैं, उनकी बार बार आवृत्ति होती है; किन्तु उन विषयों को ग्रहण करने वाली कवि कल्पना असंख्य स्वरूपों में परिवर्तित होती रहती है। कविता में विषय की प्रधानता नहीं है। इसके लिए कोई भी विषय चुना जा सकता है। श्रेष्ठतम शब्द श्रेष्ठतम ढंग से रखे गए हैं या नहीं, यह जानने के लिए भी कोई स्थिर कसौटी नहीं है। हमारा अनुभव ज्ञान, विवेक ही इसकी कसौटी है।

प्रगीतों में भावुकता का पूर्णतया सन्निवेश रहता है और तुलना में ये प्रगीत अन्य कविताओं की अपेक्षा छोटे होते हैं। इनमें कोई भी शब्द व्यर्थ का नहीं होता। भावों की अनेकता के कारण प्रगीत के भी अनेक प्रकार लक्षित होते हैं। प्रगीतों में कवि कोई एक दृश्य हमारे समक्ष रखता है, ऐसा दृश्य जिसे उसने भावुकता की दृष्टि से सृष्टि में देखा है।

पाश्चात्य मत से प्रगीत के लिए संगीत आवश्यक तत्त्व है। यूरुप में संगीत के साथ साथ ही इस प्रकार की कविता का विकास हुआ है। वहाँ का मध्यकालीन साहित्य संगीत पर पूर्णतया आश्रित था और सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक कवि-सम्प्रदाय का यह विश्वास था कि गीत रचना गाने के लिए होती है। आज का कवि इस भावना से तो नहीं लिखता फिर भी उसकी कविता में साहित्य और संगीत का वैसा ही मेल बना रहता है। एक सुन्दर गीत एकान्त ही में बिना किसी वाद्ययंत्र के सहारे ही क्यों न पढ़ा जाय, पाठक के मस्तिष्क में संगीत भर देता है। गीतों का छन्द संगीतमय होता है या उनकी भाषा संगीतमय होती है या दोनों में संगीत का तत्व वर्तमान रहता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने गीतों की कौन कहे साधारण कविता के लिए भी संगीत को आवश्यक अंग माना है। 'कारलायल' ने संगीतमय विचार को ही काव्य कहा है और 'एडगर एलन पो' ने कविता को सौन्दर्य की संगीतमय सृष्टि बताया है।

भारतीय गीत-काव्य संगीत से युक्त रहा है और इसमें भी कवियों की भावनाओं का प्रभावोत्पादक प्रकाशन हुआ है। फिर भी कुछ अंशों में यह परम्परा प्रगीतों से भिन्न है। आधुनिक हिन्दी गीति-काव्य 'लिरिक' से प्रभावित है और इस प्रभाव के फलस्वरूप यह प्राचीन गीतों से दूर जा पड़ा है।

यूरुप के गीत समाज के लिए बने हैं। उत्सवो और अन्य आनन्द के अवसरों पर इनका प्रयोग होता रहा है; लेकिन हमारे गीत निर्मित हुए हैं जनरव से दूर प्रकृति की गोद में गाए जाने के लिए। भारतीय सभ्यता अभी मौलिक रूप में है पर पाश्चात्य सभ्यता पर भौतिकता का भीषण आवरण चढ़ा है। अतः गीतों का जैसा सुन्दर, पावन रूप हमारे यहाँ है वैसा उनके यहाँ नहीं।

पाश्चात्य गीतों में कवि का व्यक्तित्व प्रधान रहता है। उसने संसार में जो कुछ देखा-सुना है उस पर अपने व्यक्तित्व का रंग चढ़ाकर पाठकों के समक्ष रखता है। ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि उसका अपना अनुभव लोक के अनुभव से भिन्न हो। गीत और लिरिक की रूप रेखा अधिकांश एक-सी होती है, केवल व्यंजना प्रणाली भिन्न होती है।

हमारे यहाँ व्यक्तित्व की प्रधानता पर इतना जोर नहीं दिया जाता क्योंकि भारतीय कवि की अनुभूति सदैव लोकानुभूति से मिलती रही है।

किसी भी साहित्य में गीतों के दो रूप देखने को मिलते हैं—लौकिक गीत और साहित्यिक गीत। निश्चय ही साहित्यिक गीतों से बहुत प्राचीन लौकिक गीतों का इतिहास है। कितनी ही जातियों के लिए ये लौकिक गीत ही 'श्रुति' हैं जिनमें उनकी प्राचीन सभ्यता रक्षित है।

लौकिक गीत उतने ही प्राचीन हैं जितनी प्राचीन है मनुष्य जाति। जब से मनुष्य ने बोलना सीखा स्यात् तभी से वह मधुर ध्वनि को प्रेम करने लगा जिसके फलस्वरूप कोमल गीत प्रस्फुटित हुए। वाणी के साथ माधुर्य का सम्मिलन ही इन गीतों का उद्गम है। तब से लेकर आज तक यह लोक-गीत-धारा अजस्र रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है जिससे जन साधारण को सर्वदा तृप्ति मिलती रही है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य भाषाओं में लोकगीत रहे हैं और हिन्दी में भी इनकी कमी नहीं है। जनसाधारण के गीत पण्डितों के गीतों से भिन्न होते हैं—एक लौकिक गीतों का प्रेमी है तो दूसरा साहित्यिक गीतों का। हमारे देश में आर्य और अनार्य दोनों जातियों के पास लोकगीति-निधि हैं। जहाँ हम ब्रज और भोजपुर के मनोहर गीतों से परिचित हैं, वहाँ हमें यह भी जान लेना चाहिए कि कोलों, गोंडों

और संथालों के गीत भी बड़े ही मार्मिक हैं! गीतों में बालक के जन्म से लेकर जीवन के कितने ही अन्य प्रमुख संस्कार विद्यमान हैं। यही क्यों, इनमें भूगोल है, इतिहास है, देव-चरित्र है, अपनी सभ्यता है, जीवन के अनेक भावुकतापूर्ण क्षणों का सफल चित्र है।

यदि हम चाहें तो लोकगीतों के तीन वर्गीकरण कर सकते हैं। ये गीत, अवसर के अनुसार बदलते हैं, जातियों के अनुसार बदलते हैं और ऋतुओं के अनुसार परिवर्तित होते है। पुरुषों और स्त्रियों के गीत भी भिन्न होते हैं।

बच्चा पैदा होता है इस अवसर के लिए सोहर और खेलवना है—वह बड़ा होने लगता है, उसके मुण्डन और कर्ण-छेदन के अनेक गीत हैं। कुछ और बढ़ने पर व्रतबन्ध होता है और तब जनेऊ के गीत गाए जाते हैं। विवाह के समय भी अनेक मांगलिक गीतों के साथ परिहास के मनोहर गीत गाए जाते हैं जिन्हें सुनकर आनंदातिरेक होता है। रुचि भ्रष्टता तथा नीच संस्कार के कारण कुछ भद्दे गीत भी सुनने को मिलते हैं, यह दूसरी बात है। गाँवो में बहुधा रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्त्रियों के गीत सुनाई देते हैं जिन्हें वे चक्की चलाते समय गाती हैं। ऐसे ही 'सोहनी' के भी गीत होते हैं जो स्त्रियों द्वारा खेतों में गाए जाते हैं। जब किसी को चेचक की बीमारी हो जाती है तो देवी को प्रसन्न करने के लिए शीतला के गीत गाए जाते हैं और यदि किसी को प्रेत-बाधा होती है तो अपढ़ लोग भूतों को मनाने के लिए 'पचरा' गाते हैं। भगवान की कृपा के निमित्त भी भजन गाए जाते हैं।

भारतवर्ष में अनेक जातियाँ रहती हैं और जाति-भेद के अनुसार गीतों के भी अनेक रूप देखने को मिलते हैं—नाई, कुम्हार, गोंड, कहार, अहीर, नट, धोबी, चमार, तेली, गड़रिया, भर, हिंजड़ा, किंगरिहा सबके अपने अपने गीत होते हैं और उनकी गायन-विधि तथा

उनके साज बाज एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न होते हैं—नाई, खँझड़ी लेकर भजन गाते हैं, कुम्हार मिट्टी के बने हुए बड़े बड़े घड़ों को बजाते हैं और अपने अपने गीत गाते हैं—गोंड और कहार 'हुड़ुक' बजाते हैं जो कि डमरू की भाँति का परन्तु आकार में उससे अधिक बड़ा होता है।

इनके अपने गीत प्रसिद्ध हैं—ये गाते गाते नाचने लगते हैं। अहीरों के यहाँ तो बिरहों की बड़ी ही मनोहर बहार होती है और बहुधा वे करताल बजाकर गाते हैं। हाँ, नाचते समय इनके वीर हृदय में भावुकता का संचार करने के लिए 'नक्कारा' आवश्यक है। इन्हीं की भाँति भर और गड़रियों के भी अपने बिरहे होते हैं। नट ढोलक बजाकर आल्हा गाते हैं और धोबी 'छड़' बजाकर अपने गीत। धोबियों के गीत बड़े ही मनोरम होते हैं और उनमें इनका जातीय जीवन सुरक्षित रहता है—देखिए,

आधीरात के काहे बोलै रे मुरुगवा,
पिया बिछुड़ल जाला मोर।
असमन होला मुर्गा मुड़िया मरोरी,
सोड़े डेवढ़िया पर ठोर॥

चमारों के गीत भजन विषयक भी होते हैं और ये सारंगी और मृदंग के साथ गाए जाते हैं।

तेली के गीत प्रातःकाल सुनाई देते हैं जिन्हें वह तेल पेरते समय गाता है। इन गीतों को 'नयका' कहते हैं। इनमें कभी कभी विशद कथानक होता है। लड़का होने पर या किसी दूसरे उत्सव में हिजड़ों और किंगरहों के गीत सुनने को मिलते हैं जिनमें बहुधा यजमान की कंजूसी की शिकायत होती है।

जातीय गीतों का अवसर वह उत्सव होता है जब जाति वालों का

एक समूह एकत्र होता है और इन गीतों के साथ नृत्य का भी मनोहर आयोजन होता है। कोई कमर में घंटी बाँधकर गुजरिया बन जाता है और सब का मनोरंजन करता है—कुछ ऐसे भी नृत्य हैं जिनमें भद्दे गीतों की भाँति भद्दे इशारे चलते हैं। चाहे जो कुछ हो इन गीतों और नृत्यों में इन जाति वालो की भावुकता तो लक्षित होती ही है। नृत्यों में स्त्री रूप बनाने की प्रथा विशेष प्रचलित है।

ऋतु परिवर्तन के आधार पर लोक गीतों के अनेक भेद हो गए हैं। जैसे चैता, कजली, फाग, बसन्त, होरी, बारहमासा। चैता चैत में गाया जाता है सावन के महीने में कजली का बोलबाला रहता है और फाल्गुन में फाग, बसन्त और होरी की धूम होती है। बारहमासे में बारहों महीने का वर्णन रहता है।

बहुत से गीत ऐसे हैं जिन्हें केवल स्त्रियाँ ही गाती हैं, कुछ केवल पुरुष गाते हैं और कुछ दोनो द्वारा गाए जाते हैं। सोहर, नचारी, गाली, जाँत के गीत, शीतला के गीत बहुधा नारियो के ही गीत हैं। चैता, फाग, होरी, चहका पुरुषो द्वारा गाए जाते हैं। कजली स्त्री और पुरुष दोनों गाते हैं। स्त्रियों के गीतों में स्वकीया नायिका की प्रेमाभिव्यक्ति विशेष रूप से रहती है। पत्नी अपने पति के विषय में अनेक सरस तथा करुण बातें कह जाती हैं। परकीया-प्रेम के गीत कृष्ण गोपिकाओं की प्रेमलीला को लेकर चले आते हैं। इससे उन पर भक्ति या धर्म का रंग चढ़ गया है।

समय के साथ लोक गीतों में भी महान् परिवर्तन हुए हैं। शृंगार के क्षेत्र से निकलकर ये गीत अब राष्ट्रीय, जातीय तथा अन्य उच्चभाव भूमियों पर पदक्षेप कर रहे हैं।

भोजपुरी लोकगीतों में भारतवर्ष के पूर्वी हिस्से का बड़ा मनोहर

वर्णन मिलता है। वहाँ का पुरुष सर्वदा बंगाल में द्रव्योपार्जन के निमित्त जाता है और बहुधा वहाँ के दीर्घ केशों वाली बंगालिनों के चक्कर में पड़ जाता है।

इन गीतों में बंगाल के चावल, पान और नारियल का भी उल्लेख मिलता है। वीर कुँवरसिंह को लेकर कई एक गीत गाए जाते हैं जिनमें सन् १८५७ के गदर का अच्छा दृश्य अंकित है। इसी प्रकार कजलियों में द्वितीय महायुद्ध, भारत के स्वतंत्रता संग्राम यहाँ तक कि अति प्राचीन पौराणिक आख्यानों का विशद वर्णन भी मिलता है। इनमें शंकर-पार्वती की सुन्दर छवि अंकित है और दशरथ, राम, सीता इत्यादि का भी उल्लेख है। ये देवता मनुष्यों के रूप में ही चित्रित हुए हैं और इनका व्यवहार संसारियों-सा है। उड़िया गीतों में राम और सीता को साधारण किसान के समान रखा गया है।

लोक गीतों में मनोहर कवित्व के दर्शन होते हैं। कई एक अनूठी उपमाएँ देखने को मिलती हैं—भोजपुरी का एक गीत है—

"भरली गगरिया उठवले जैसे गोइयाँ,
तइसे बिछिलल गोड़वा हमार।
जो पै बलबिरवा न बहियाँ धरत तो पै,
बहिती जमुनवाँ के धार॥"

और इसी के समान अर्थ रखने वाली है 'मंडन' की यह कविता—

रपट्यो पग घाट चढ़ो न गयो कवि मंडन भूमि बिहाल गिरी।
चिरजीवहु नंद को बारो अरी गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी।

इनमें रसो का भी बड़ा ही रम्य परिपाक हुआ है—विवाह के गीतों में, बिरहा में, कजली में सर्वत्र शृंगार के दर्शन होते हैं, सोहर में वात्सल्य की अनुपम छटा रहती है। लड़कियों की विदाई के गीतों, वैधव्य के वर्णन से पूर्ण गीतों तथा वियोग के गीतों में करुणा का अपार सागर

लहराता है तथा भजन और शीतला के गीतों में शांत रस का समावेश होता है। आल्हा में वीर रस का प्रवाह रहता है। ऐसे ही अन्य रस भी मिलते हैं। इनका संसार बड़ा ही पवित्र है जहाँ सोने और चाँदी के पात्र हैं और अगर कपूर की सुगन्धि। भारत का प्राचीन गौरव और उच्च सभ्यता इनमें भरी पड़ी है। ये लोक गीत देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पाए जाते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि ये बहुधा परस्पर साम्य रखते हैं।

अनार्यों के गीत भी पर्वों पर गाए जाते हैं और उत्सव में इनका विशेष समावेश होता है। संथालों के सोहराय, दासांय, काराम ऐसे ही गीत हैं जिन्हें ये क्रम से गोपूजन, दशहरा तथा वार्षिक श्राद्ध के समय गाते हैं। ऋतु के अनुसार भी कुछ गीत गाए जाते हैं—संथाली 'बाहा' गीत गाकर वसन्तोत्सव मनाते है। उनके यहाँ भी 'बिरहा' के समान एक गीत होता है जिसे 'विर-सेरेज' कहते हैं।

कुछ ऐसे गीत हैं जिन्हें केवल अविवाहित युवक ही गाते हैं—इनमें 'दोङ्सेरेज' प्रसिद्ध है। विवाहितों के गीतों में 'लाङ्गड़े' का विशेष महत्व है। कोलों और गोंड़ों का 'करमा' गान और नृत्य अधिक प्रसिद्ध है। कुछ अविवाहित युवक और कुछ अविवाहित युवतियाँ एक साथ मिलकर करमा गान गाते हैं और नृत्य करते हैं। इन जातियों में जब तक विवाह नहीं हुआ है, कोई युवक किसी क्वाँरी युवती से मिल सकता है। विवाह होने के पश्चात् ही प्रतिबन्ध लगते हैं। अतः इनके यहाँ नाचने-गाने की बहुत स्वच्छन्दता रहती है—पुरुष गाते हैं, स्त्रियाँ गाती हैं और बहुधा प्रश्नोत्तर भी होता है। साथ में माँहर और बंशी बजती रहती है और कभी कभी मद्यपान भी होता जाता है। इन गीतों के साथ नृत्य भी आवश्यक है।

साहित्य की रूढ़ियों के अनुकूल निर्मित गीत साहित्यिक गीत कहे

जाते हैं। लौकिक गीतों के लेखकों का पता नहीं; पर साहित्यिक गीतकार श्रेष्ठ कवि हो गए। इन गीतों की परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। कुछ लोग इनकी उत्पत्ति भगवत कीर्तन से मानते हैं पर इनकी परम्परा स्पष्ट रूप से संस्कृत कवि जयदेव के समय से चली है जिन्होंने गीत गोविन्द की रचना करके इस प्रथा को चलाया। वस्तुतः लौकिक गीतों से आकृष्ट होकर कवि ने 'गीत गोविन्द' का निर्माण किया। जयदेव की मधुरता से जो कवि इस पद्धति की ओर वेग से आकृष्ट हुए उनमें विद्यापति और चण्डीदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विद्यापति ने मैथिली में गाया और चण्डीदास के साथ तो बंगला में गीतकाव्य का अरुणोदय ही हुआ। 'विद्यापति' को साहित्यिक गीतों के मूल रूप ग्राम्य गीतों से विशेष मोह था, साथ ही 'देसिल बअना' भी उन्हें प्रिय थी। इनका अनुकरण सूरदास ने किया और पदों में ही सूर सागर को भरा। सगुण उपासना वाले कवियों ने ही नहीं, निर्गुण उपासकों ने भी गीत लिखे जिनमें कबीर प्रमुख हैं। इसी पद्धति पर गोसाईं जी ने विनय पत्रिका, गीतावली और कृष्ण गीतावली की रचना की।

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के जीवन के प्रति ही विशेष मोह दिखलाया; अतः जीवन की अनेकरूपता के अभाव में प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा गीत काव्य में ही बालक्रीड़ाओं तथा रास लीलाओं का सफल चित्रण हो सका।

पश्चिमी हिन्दी बोलने वाले सम्पूर्ण प्रदेश में गीतों की भाषा ब्रज थी। दिल्ली के आसपास भी ब्रजभाषा में ही गीत गाए जाते थे जैसा कि खुसरो के गीतों से विदित होता है। कबीर की साखी तो सधुक्कड़ी बोली में है पर उनके पद ब्रज में ही हैं। हिन्दी में राधा कृष्ण की प्रेम लीला के गीत सूर के पहले से चले आते है। इसके प्रमाण स्वरूप "बैजू-बावरा" के कुछ पद हैं जिसका काल सूरदास जी से पूर्व था।

सूर की रचना विद्यापति की शैली पर यहाँ तक हुई है कि कहीं कहीं तो गीतों के भाव एकदम मिल जाते हैं।

विद्यापति—

अनुखन माधव माधव सुमिरइत, सुन्दरि भेल मधाई।
ओ निज भाव सुभावहिं विसरल, अपने गुन लुबधाई॥

× × × ×

भोरहिं सहचरि कातर दीठि हेरि छलछल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि॥
राधा समै जब पुनितहि माधव माधव सैं जब राधा।
दारुन प्रेम तबहिं नहिं टूटत बाढ़त विरहक बाधा॥
दुहुं दिसि दारु दहन जइसे दगधइ आकुल कीट परान।
ऐसन बल्लभ हेरि-सुधा मुखि कवि विद्यापति भान॥

सूर—

सुनौ स्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाय कहै।
दुहुँ दिसि कीरति विरह विरहिनी कैसे कै जो सहै।
जब राधे तब ही मुख माधव माधव रटत रहै।
जब माधव है जात सकल तनु राधा विरह दहै।
उभय उग्र दवदारु कीट ज्यों सीतलताहि चहै॥
'सूरदास' अति विकल विरहिनी कैसेहु सुख न लहै॥

इतना ही नहीं सूरदास ने दृष्टिकूट के पदों में भी विद्यापति का अनुकरण किया है। सारंग को लेकर सूर ने अनेक गूढ़ पद लिखे हैं पर विद्यापति ने इनसे पहले ही यह लिखा था—

"सारंग नयन, बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथ मधुपाने॥

यह सब होते हुए भी विद्यापति और सूर के गीतों में स्पष्ट अन्तर है। एक ने साहित्य परंपरा से स्वीकृत कृष्ण का रूप लिया है। उसके कृष्ण वैसे ही हैं जैसे उसके पहले के संस्कृत कवियों के थे; पर दूसरे ने उपास्य मानकर राधा कृष्ण का यशोगान किया है। दोनों के विषय एक हैं पर गीतों में उपरोक्त कारण से भिन्नता आ गई है। सूर के गेय पद एक-एक लीला के बने हुए एक-एक चित्र हैं। इनमें शब्द माधुर्य के साथ स्वरों की भी उत्कृष्ट साधना है। शुद्ध कवि-चेतना के साथ ही तन्मयकारी संगीत भी है। गीत में पंक्तियों के साथ साथ सूर की प्रेम-भावना क्रमशः बढ़ती जाती है और प्रायः अन्तिम पंक्तियों में अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर मौन हो जाती है। आनन्द विभोर कवि मानो गान के अन्त में आराध्यदेव को अपनी आत्मा समर्पित कर देता है। यहाँ कला का उच्चादर्श है और धर्म की असाधारण भावभूमि।

पाश्चात्य दृष्टि-कोण से इन गीतों को असंगत कहा जा सकता है, क्योंकि इनके कुछ भाव अद्भुत और अस्वाभाविक हैं; पर यह मान दंड अभारतीय है।

जयदेव के समय से ही गीतों के विषय-रूप में कृष्ण की लीलाएँ आती रहीं; अतः हिन्दी कवियों ने भी व्रजभाषा में व्रजनाथ के लीला-गीत गाए। अनेक प्रवृत्तियों का समन्वय करने वाले गोस्वामी जी इसे क्यों छोड़ने लगे।

उन्होंने कृष्ण गीतावली की रचना की। उनकी दूसरी गीत-पुस्तकों में भी अन्य देवों के प्रति अनेक गीत हैं। सच पूछिए तो साहित्यिक गीतों का श्रेय कृष्ण भक्त कवियों को है जिन्होंने मधुर भाव की उपासना के नाते इनकी माधुरी को पहले-पहल पहचाना, यद्यपि निर्गुण उपासकों ने भी अपने मत के प्रचार के निमित्त इन्हें अपनाया।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने यद्यपि मानस के निमित्त अवधी को

ग्रहण किया; पर उनके गीत ब्रज में ही पल्लवित हुए, यही क्यों गीतों के विषय स्वरूप कृष्ण का मधुर जीवन भी उन्होंने चुना। इनकी भाषा कहीं संस्कृत गर्भित मिलती है और कहीं कहीं सरल। विनयपत्रिका में अनेक देवी देवताओं की प्रार्थना है और भाषा अधिकतर संस्कृत गर्भित है। लौकिक गीत भी गोसाईं जी ने लिखे हैं जो नहछू, नहावन के अवसर पर गाए जाते हैं। इनके पदों के भाव कहीं-कहीं सूर से मिल जाते हैं। एक ही विषय को आधार मानकर चलनेवाली प्रतिभा-शक्तियाँ कभी कभी एक समान चित्र उपस्थित कर देती है। देवी देवताओं की महिमा, भक्त की अकिंचनता, भावों की मधुरता सब मिलकर गोसाईं जी के बड़े ही उत्तम बने हैं।

कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास जी के अनन्तर नन्ददास, मीरा, सहजो आदि कई एक गीत-लेखक हुए। नन्ददास जी के गीतों में कृष्ण की परम्परा-गृहीत आनन्द माधुरी है और मीरा में प्रेम की पीर भरी पड़ी है।

मीरा के पद नटवर को लेकर लिखे गए हैं। उनमें आराध्य की भिन्न भिन्न मुद्राओं तथा रूपों का सजीव वर्णन है। पढ़ते पढ़ते ऐसा ज्ञात होता है मानों पास ही मीरा आनन्दासव से छककर गा रही है। पदों की कोमल स्निग्ध भावधारा को गूढ़ कल्पनाओं के कारण कहीं भी रुकना नहीं पड़ता। नारी सुलभ माधुर्य को गीत-पद्धति में ढालकर मीरा ने सुन्दर पदों का निर्माण किया है। इनमें साधिका की गहरी अनुभूति है और साध्य की मनोहारिणी मूर्ति। भाषा अकृत्रिम है। भाव सीधे हृदय से निकलकर अपने प्रकृत रूप में अभिव्यक्त हुए हैं।

भक्त कवियों का भी अपना एक समय था। एक ओर धर्म पर यवनों द्वारा आघात हो चुका था तो दूसरी ओर उसकी रक्षा के निमित्त सगुण मूर्ति स्थापित हो चुकी थी। धीरे धीरे हिन्दुओं ने मुसलमानों का आधि-पत्य स्वीकार कर लिया और समाज की अवस्था बदल गई। साथ ही

कविता का रूप भी बदल गया। मुसलमानी काल के विलास ने वैष्णवों की गीत वाली पावन परम्परा की शक्ति क्षीण कर दी, क्योंकि गीत में भगवान का वर्णन अपेक्षित था, विलास का नहीं।

इस युग में मुक्तकों की भरमार थी; पर साहित्यिक गीत किसी ने न लिखे। हाँ, गीतों का लौकिक रूप बना रहा। आगे चलकर लखनऊ की नवाबी में राधा कृष्ण के स्थान पर 'सँवलिया' 'पिया' का समावेश हो गया और गीत अध्यात्म के क्षेत्र से एकदम उठकर समाज में जा मिले। यह भी अच्छा ही हुआ। गीत के जिन स्रोतों में शुद्ध भक्ति का संचार हो चुका था, उनमें विलासिता का गंदा पानी बहाना सर्वथा अनुचित होता। विलास वर्णन के लिए कवित्त-सवैये ही उपयुक्त थे। गीत-काव्य की पावनधारा भक्तिकाल में लहराकर रीति काल के मरुस्थल में समा गई। अब छायावाद के उदय के साथ इसका स्रोत पुनः फूट निकला।

गीत और इतर काव्य

प्राचीन काल में गीतों को वाद्य यंत्रों की संगति में गाया जाता था। सब कवितायें तो इस प्रकार गाई नहीं जा सकती थीं इसलिये उनसे गीत भिन्न रहे। यह भिन्नता अति प्राचीन है। यूनानी विद्वानों ने इस विषय की खूब चर्चा की है। उन्होने तो साधारण गेय पदों और गीत काव्य के भेद पर भी बहुत कुछ लिखा है जैसा कि नीचे के उद्धरण से स्पष्ट है :—

There was an early distinction soon accentuated in greece between the poetry chanted by a choir of singers and the songs which expressed the sentiments of a single poet.

अंग्रेजी के प्राचीन समालोचक William Webbe ने सन् १५८६ में ही कविताओं को चार वर्गों में बाँटा था जिसमें 'लिरिक' का भी अपना एक वर्ग था। यद्यपि यह वर्ग विभाजन अपूर्ण था, फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि गीतों की अन्य काव्यों से भिन्नता प्राचीन काल से ही मान्य रही है।

गीतों की उत्पत्ति साधारण कविता से नहीं मानी जाती। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि इनका जन्म संगीत और नृत्य के साथ हुआ है। अन्य प्रकार की कविताओं की अपेक्षा गीतों में कुछ और भी विशेषतायें हैं।

इनमें कवि-हृदय की सरलता रहती है; वह बिना किसी बनावट या संकोच के अपने विचारों को सरल रूप से पाठकों के समक्ष रख देता है,

उन्हें अधिक अलंकृत करने की चेष्टा नहीं करता। इनका स्वरूप सरल होता है और इन्हें अनुप्राणित करने वाली भावना भी सरल होती है। तात्पर्य यह कि इनका अन्तर्बाह्य सब सरल होता है।

साधारण कविता की अपेक्षा इनमें लय की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। गीतों के लिए गेय होना अनिवार्य गुण है। यदि इनमें संगीत का तत्त्व कुछ भी न्यून हुआ तो ये मृत हो जाते हैं। संगीत ही वह प्रधान विशेषता है जो इन्हें अन्य काव्य-वर्ग से भिन्न करती है।

संगीत-योजना के निमित्त ही छोटे-छोटे छन्दों का प्रयोग होता है, ऐसा ही पाश्चात्य विद्वानों का भी मत है :—

But simple natural singing has always required shorter measures because of the necessity of pausing to draw breath.

पहले गेय पदों को ही गीत कहा करते थे; पर कालान्तर में उनके लिए एक और विशेषता अपेक्षित हो गई। गीतों में कवि के अन्तर्जगत का चित्रण अनिवार्य हो गया। यहाँ वह अपने अन्तर्जगत से संबंधित इच्छाओं, आशाओं तथा चिन्ताओं के गीत गाता है और महाकाव्य या नाटक में अपने से पृथक किसी देवता या महापुरुष का गुण गान करता है; पर यहाँ भी गीत रह सकते हैं—

We recognise a narrative or epical poetry, we recognise drama, in both of these when the individual inspiration is strong there is much that trembles on the verge of lyrical.

'साकेत' और 'कामायनी' दोनों महाकाव्यों का नवम सर्ग गीतों से भरा है और नाटकों में तो गीतों का समावेश प्राचीन काल से ही होता आ रहा है।

गीतिकार कभी कभी भावनाओं का अतिरंजित स्वरूप भी प्रस्तुत

करता है। विद्यापति ने ऐसा ही किया है और विरह की दशो दशाओं का वर्णन किया है। उनकी पदावली में अभिलाषा से लेकर मरण पर्यन्त तक की सब अवस्थायें आ गई हैं।

गीतों के लिये मनोहर प्रकृति का आधार भी कम आवश्यक नहीं है। प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित मनोभाव गीतों में जितने मधुर प्रतीत होते हैं उतने शुद्ध भाव नहीं। भावो के साहचर्य में यदि प्रकृति का वर्णन भी आ जाय तो गीत और मनोहर हो जाते हैं। प्रकृति का आधार अनेक गीतिकारों ने लिया है। क्या चंडीदास क्या सूरदास, क्या 'पंत' और 'प्रसाद' सबमें प्राकृतिक सौन्दर्य है। महादेवी जी के गीत तो प्रकृति की ही संपत्ति हैं।

गीत प्रबन्ध काव्य से सर्वथा भिन्न हैं, क्योंकि इनका स्थान मुक्तक वर्ग में है। अनेक समालोचकों के अनुसार जहाँ अन्तः सौन्दर्य व्यक्त करना होता है वहाँ कलाकार गीति काव्य का आश्रय लेता है और जहाँ वाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति इष्ट होती है वहाँ प्रबन्ध काव्य का सहारा लेता है। पर यह भेद अत्यन्त स्थूल है और उचित नहीं जान पड़ता।

गीतों में कोई एक तीव्र मनोभाव या समस्या प्रधान रहती है, लेकिन प्रबंध काव्य में बहुमुखी जीवन दशाओं का चित्रण रहता है, जीवन की अनेक स्थितियों का समावेश रहता है। महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन रहता है, खण्ड काव्य में एक काल और गीतों में क्षण विशेष।

प्रबन्ध काव्य में विषय की प्रधानता रहती है; अतः उसका सम्यक् निर्वाह करने के लिए बौद्धिक विकास की आवश्यकता होती है, परन्तु गीतों में अनुभूति की प्रधानता होती है और इनमें जीवन की तीव्र भावना अभिव्यक्ति पाती है। गोस्वामी जी को रामचरित के समान विशाल विषय लेकर चलने वाले मानस के निर्माण में जिस बौद्धिक

सतर्कता की आवश्यकता पड़ी थी, क्या आज के तेरह पंक्तियों में समाप्त होने वाले एक मनोवेग से सम्पन्न गीत लिखने वाले कवि को भी उसकी आवश्यकता पड़ सकती है ? प्रबन्ध काव्य के लिए विषय को सज्जित करने वाली बौद्धिक शक्ति भी अपेक्षित है जो क्रमबद्ध विवरणों को उपस्थित कर सके। गीतों में कोई ऐसा विशाल विवरण तो होता नहीं फिर उतनी सतर्कता की क्या अपेक्षा है ?

गीत माधुर्य-प्रधान काव्य है। कर्कश और कटु भावों से गीतों का कोई संबंध नहीं; इसलिए गीतों की रागिनी मधुर होती है। प्रबन्ध काव्यों में सब तरह के भाव अभिव्यक्त होते हैं, जीवन का प्रत्येक क्षण तो मधुर होता नहीं, अतः समय के एक बड़े भाग को लेकर चलने वाले प्रबन्ध काव्य में माधुर्य कैसे प्रधान रह सकता है।

प्रबंध-काव्य युग को कोई नया संदेश देता है, इसलिये भूमिका विषयानुकूल और उदात्त होती है। गीतों में कोई अति गम्भीर बात नहीं रहती, और वे थोड़ी सी पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं, अतः उनके प्रधान भाव को व्यक्त करने के लिए लम्बी चौड़ी भूमिका बाँधना व्यर्थ आयास सा लगता है।

प्रबंध काव्य वर्णनात्मक काव्य है जहाँ वाह्य जगत का सौन्दर्य विशेष चित्रित होता है। रीति ग्रन्थों में ऐसे वर्णन विषयक अनेक नियम लिखे गये हैं जिनका महाकाव्य में अवश्य पालन होना चाहिये। साहित्य दर्पणकार के अनुसार संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, दिन, प्रातः मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, बन, सागर, संत, असंत आदि के वर्णन आवश्यक हैं। गीतों का अन्तर्जगत से संबंध है, उनका दुनिया के इस विस्तार में मन नहीं लगता। वे कवि के हृदय से ही प्यार करते हैं, अतः उनमें सूक्ष्म और रहस्यमय मनोगतियों की सुषमा ही अधिक देखने को मिलती है।

महाकाव्यों का उद्देश युग निर्माण में सहायता करना होता है, अतः उनके लिए नैतिकता का बंधन आवश्यक है; गीतों के निमित्त ऐसा कोई बंधन नहीं है, यहाँ वह स्वानुभूति का चित्रण करता है, केवल कवि रहता है, नैतिक या धार्मिक सलाहकार नहीं।

प्रबन्ध तथा गीत दोनों प्रकार के काव्यों के लिए छन्दों का आश्रय अनिवार्य है। पहले में अनेक प्रकार के छन्द हो सकते हैं छोटे भी बड़े भी; पर गीतों में छोटी कोमल शब्द योजना ही रहती है। संगीत ऐसे ही छन्दों में अधिक होता है। जिनका प्रत्येक चरण एक ही साँस में गाया जा सके। यदि किसी छन्द का कोई पद इतना बड़ा है कि उसके गाने में साँस टूट जाती है तो संगीत का आनन्द ही नहीं रह जाता क्योंकि टूटी फूटी ध्वनियों को जोड़कर संगीत रचना नहीं होती।

गीतों में व्याप्त कल्पना की उड़ान गद्य में नहीं मिल सकती। Drinkwater जैसे विद्वान् समालोचक ने भी ऐसा ही माना है। गीत और गद्य साहित्य के दो भिन्न भिन्न अंग हैं; अतः इनका भेद स्वयंसिद्ध है, उसे विस्तारपूर्वक क्यों लिखा जाय।

गीत स्वच्छन्द छन्दों से भी सर्वथा भिन्न हैं। गीत प्राचीन काल से ही चले आते हैं और स्वच्छन्द छन्द अपनी भाषा के लिये सर्वथा नवीन हैं, यद्यपि कुछ विद्वानों ने इनका रूप ऋग्वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थ में भी देखा है। 'पंत और पल्लव' शीर्षक लेख में 'निराला' जी ने इस भेद को विस्तारपूर्वक समझाया है।

गीतों की एक सीमा होती है जिसे पार कर चुकने पर हमें स्वच्छन्द छन्द की भूमि मिलती है। स्वच्छन्द छन्द गीतों के आगे की चीज हैं। इसमें अनुप्रासों की कृत्रिमता नहीं रहती, क्योंकि यदि कारीगरी की गई, मात्राएँ गिनी गई, लड़ियों के बराबर रखने पर ध्यान दिया गया तो इतनी वाह्य विभूतियों के गर्व में स्वच्छंदता का सरल सौन्दर्य, सहज

प्रकाशन निश्चय ही नष्ट हो जायगा। गीतों में यह कृत्रिमता आ सकती है, पर स्वच्छन्द छन्द इसका वहिष्कार करते हैं।

स्वच्छन्द छन्द में पढ़ने की कला प्रधान है। उसमें संगीत की उतनी प्रधानता नहीं होती। ऐसे छन्दों का सौन्दर्य वार्तालाप में है और गीतों का सौन्दर्य गाने में। यदि पाठक को पढ़ने का ढंग नहीं मालूम है तो वह इन छन्दों का आनंद नहीं पा सकता। पहले पहल निराला जी ने इसकी रचना कवित्त के आधार पर की थी।

मुक्त छन्दों को पढ़ते हुए ऐसा मालूम होता है मानो कवि का अपने भावों पर अधिकार नहीं है। भाव छन्द के बंधन को तोड़ उन्मुक्त गति में फूट पड़ते हैं। लेकिन गीतकार इस भाँति अपना अधिकार नहीं खो बैठता; वह अपने नियंत्रित भावों को सम्पूर्ण वेग के साथ नपे तुले शब्दों और संगीतमय छन्दों में व्यक्त करता है। छन्द के इस बन्धन से गीतों में एक सौन्दर्य आ जाता है। इस सीमा में वे अधिक प्रिय लगते हैं और उनका प्रभाव भी नहीं विखरता।

स्वच्छन्द छन्दों में वाह्य समता नहीं दिखाई देती। केवल उसके पाठ से, प्रवाह से सुख प्राप्त होता है। गीतों में वाह्य समता भी लक्षित होती है और पाठ का आनंद भी मिलता है। मुक्त काव्य में स्वर की लड़ियाँ विषम होती हैं और गीतों में सम। स्वच्छन्द छन्द का यह भेद केवल गीतों से ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण छन्दबद्ध कविता से है और गीत भी तो ऐसी ही एक छन्द वद्ध कविता है जो गाई जा सके।

आधुनिक गीत-काव्य

भक्तिकाल के अनन्तर फिर बहुत दिनों के बाद छायावाद काल में आकर गीत रचना हुई। इसके भी अनेक कारण थे। हमारे यहाँ भक्तकवि अपने आराध्य के प्रति गीत लिखा करते थे। रीतिकाल में कुछ कवियों को छोड़कर किसी ने प्रबन्ध काव्य भी नहीं लिखा। वह युग कवित्त सवैयों का था जब कि चमत्कार की प्रधानता थी। शृंगारी और चमत्कार प्रिय कवियों में उतना धैर्य ही नहीं था कि कथानक लेकर चले, अतः मुक्तको की बाढ़ आ गई फिर भी इन्होंने गीत रचना नहीं की। किसको प्रसन्न करने के लिए करते? कोई आराध्य तो था ही नहीं। भौतिक सौन्दर्य ही में विशेष आकर्षण था। देव के प्रति श्रद्धा लुप्त प्राय थी। शाही दरबारों में गीत, गायन के रूप में बच गया था। आगे चलकर वह भी अधो-मुख हो गया।

भारतेंदु युग में रीतिकाल का अवसान तथा आधुनिक युग का निर्माण दिखाई देता है। यहाँ तक पहुँचते पहुँचते लोगों की रुचि बदल गई थी। वे रीति काल के विषय-वर्णन तथा कविता कामिनी के रंग महल नर्तन तृप्त से हो गए थे। अब उन्हें काव्य में किसी नवीन आकर्षक अंग की खोज थी। इन्होंने नवीनता के लिए प्राथमिक प्रयास किया। फिर भी काव्य के उपकरण बहुधा प्राचीन ही रह गए।

नवीनता प्रिय भारतेंदु मंडल ने एक साथ ही समाज और साहित्य

दोनों में क्रान्ति उपस्थित की। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए अथक परिश्रम हुआ। स्त्री शिक्षा, देशप्रेम और अन्य उपयोगी प्रथाओं के प्रचार के निमित्त अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। मातृभाषा का गौरव नवीन दृष्टिकोण से निर्धारित किया गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हुआ और ज्ञान प्रसार के लिए गद्य का सम्यक प्रचार तथा विस्तार हुआ। रीतिकालीन काव्य तथा तत्कालीन भाषा को बिदा करके नवीन कविता तथा खड़ी बोली को ग्रहण किया गया।

इसी भूमिका पर द्विवेदी युग का अभ्युदय हुआ और पद्य प्रवाह के लिए अनेक मार्ग खुले।

कुछ कवि ऐसे थे जो हिन्दी में उर्दू फ़ारसी के तौर पर पद्य व्यवस्था चाहते थे। यह पद्धति सर्वप्रिय न हो सकी फलतः इसका प्रचार न हो सका; यद्यपि आज भी कुछ लब्धप्रतिष्ठ कवि इसको आजमाते दिखाई देते हैं। यह भारतीय परम्परा के प्रतिकूल पूर्णतया विदेशी मार्ग था; इसलिए इस पर कविता कामिनी न चल सकी।

दूसरे वर्ग के कलाकारों ने संस्कृत वर्णवृत्तों के अनुसार रचना करनी प्रारम्भ की। इसकी माधुरी आकर्षक थी। फिर भी यह पद्धति प्रचलित न हो सकी। संस्कृत के समस्त पदों तथा बड़े बड़े समासों के बोझ को उठाने में तत्कालीन खड़ी बोली असमर्थ थी। इतना ही नहीं। भय यह था कि कहीं यह गहन शब्द-जाल, खड़ी बोली के प्रचार में, इसके मंजने तथा सुष्ठु होने में घातक सिद्ध न हो। इस प्रथा में अति प्राचीनता के प्रति मोह भी लक्षित होता था जिसकी प्रतिक्रिया द्विवेदी युग की प्रधान शक्ति थी। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इसी शैली में प्रिय प्रवास की रचना की। उस समय तो इसकी बड़ी धूम थी, पर समय के साथ कम होती गई। इसकी कोमल कांत पदावली कितने ही व्यक्तियों को अत्यन्त प्रिय थी—

सरस सुन्दर सावन मास था
घन घटा नभ थी घिर घूमती ।
विलसती जिसमें बहुधा रही
छविवती उड़ती बक पंगती ॥

इस शैली पर और भी पुस्तकें लिखीं गई हैं । अनूप जी का सिद्धार्थ देखिए :—

न छू सके पुष्पवती लता कहीं
मिले न मातंगवती नदी कहीं ।
इसीलिए तत्क्षण गंधवाह भी
प्लवंग सा पादप पुंज पै चढ़ा ॥

आगे चलकर पं० सुधाकर जी मिश्र ने इसी ढंग पर रामाश्वमेध नाम के महाकाव्य की रचना की जो अभी तक एक अप्रकाशित ग्रंथ है । इसकी शैली वैसी ही मधुर और संस्कृत गर्भित है ।

हिन्दी पद्य प्रवाह का तीसरा मार्ग हिन्दी छन्दों से ही होकर गया था । यह पद्धति हिन्दी की अपनी थी और उसके अनुकूल थी । पद्यप्रवाह को हिन्दी के अपने छन्दो में से ले जाने वालों में श्री मैथिलीशरण जी गुप्त और बाबू गोपालशरण सिह प्रमुख हैं । इन्होंने भाषा तथा छन्दों का परिष्कार किया । 'गुप्त' जी ने भाषा में ओज भरा और गोपालशरण ने माधुर्य ।

काव्य के प्रथम उत्थान में भारतेंदु ने उसे समाज तथा राजनीति के साथ लगा दिया था । यह सम्बन्ध प्रतिदिन दृढ़ होता चला गया । 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से नवीनता के लिए सफल आन्दोलन हुआ और अनेक विषयों पर कविताएँ लिखी जाने लगीं । अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ और स्वतंत्र वर्णन के लिए प्रकृति को अपनाया गया । अब जाकर लोगों ने यह भी समझना प्रारंभ किया कि प्रकृति के भी प्राण हैं,

उसका भी अपना व्यक्तित्व है। वह केवल उद्दीपन की सामग्री नहीं है, उसका स्वतंत्र वर्णन भी हो सकता है। फिर भी यह प्रयोग काल ही था जब कि खड़ी बोली को अनेक प्रकार के पद्यों और छन्दों में ढालने की चेष्टा की जा रही थी।

इसी समय पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने हिन्दी में छन्द की नई योजना उपस्थित की। इनका मुक्त-छन्द काव्य में कोरी छन्दोबद्धता या तुकबन्दी की प्रतिक्रिया स्वरूप आया। यह स्वच्छन्दता वादी युग के आगमन की सूचना दे रहा था। 'निराला' जी का यह छन्द मुक्त होते हुए भी वर्ण संगीत के आधार पर चलता है।

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही थी,
वह संध्या सुन्दरी,
परी सी धीरे धीरे धीरे।

यह कवित्त का स्वच्छन्द स्वरूप है। इसका प्रयोग धारावाहिक भावाभिव्यक्ति, नाट्य संवाद तथा वीर रस की रचनाओं के लिए सफलता पूर्वक किया गया है। यह सब होते हुए भी प्रारम्भ में इसके स्वागत की बात कौन कहे, भरपूर उपेक्षा हुई। भारतेन्दु युग में कविता को रीति कालीन विषयों से मुक्त किया गया और यहाँ आकर निराला जी ने उसके तुक के बन्धन को जिसमें शताब्दियों से वह जकड़ी हुई थी तोड़ फेंका।

काव्य के तृतीय उत्थान में उसका अच्छा स्फुरण हुआ। यह काल देश की राजनीतिक जाग्रति का था।

साहित्य-क्षेत्र में पूर्णतः काँग्रेस के सिद्धान्तों का प्रभाव बढ़ा। अनेक आन्दोलनों के साथ-साथ देश-भक्ति का स्वर भी उठा जिसे 'भारतीय-आत्मा' ने अपनाया।

प्रचलित काव्य परम्परा से असन्तोष के कारण ही भारतेन्दु मंडल को विरोध करना पड़ा। द्वितीय उत्थान में इस विरोध भावना का अधिक प्राबल्य हो गया, देश प्रेम अधिक बलशाली हो यया। हिन्दी कविता के तृतीय उत्थान काल में प्रथम और द्वितीय उत्थानों की प्रचलित काव्य परिपाटी का विरोध हुआ, यहीं से छायावाद का जन्म मानना चाहिए। छायावाद की उत्पत्ति इसी साहित्यिक क्रान्ति के फलस्वरूप हुई। भावाभिव्यक्ति के लिए द्विवेदी युग के साधन अपर्याप्त थे। न तो संगीतात्मक छन्द थे और न काव्योचित भाषा। विषय और विषयाभिव्यक्ति ऐसी थी जैसे कोई निबन्ध लिखने की तैयारी कर रहा हो। उपदेशात्मकता काव्य की सीमा का अतिक्रमण कर रही थी। इन सबके विरुद्ध विद्रोह और नवीन सृष्टि तथा विस्तार की कामना से छायावादी आन्दोलन उठा।

हिन्दी पद्य के द्वितीय उत्थान में सब कुछ था, केवल दो प्रमुख शक्तियों का अभाव था। कल्पना का रंग फीका था और हृदय का वेग दब सा गया था; अतः अभिव्यक्ति कुंठित हो उठी थी। इस अभाव को दूर करने के लिए छायावाद युग के पहले भी कुछ गीत लिखे गए थे जिनमें अभिव्यंजना की नवीन प्रणाली का विकास हो रहा था। इनके लेखक थे बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त, श्री मुकुटधार जी पांडेय और बद्रीनाथ भट्ट। इन गीतों में रंगीन कल्पना का प्रयोग था और हृदय के उद्‍गार स्पष्ट रूप से व्यक्त हुए थे; भाषा चित्रमयी थी और शैली 'लिरिक' से प्रभावित। यह प्रभाव बँगला के माध्यम से हिन्दी के क्षेत्र में आया और इसके साथ साथ वे चेतनाएँ भी आईं जिनके लिए आगे चलकर छायावाद युग में प्राचीन परम्परा का विरोध हुआ। देखिए—

"मेरे आँगन का एक फूल,
सौभाग्य भाव से मिला हुआ,

श्वासोच्छ्वासन से हिला हुआ,
संसार विटप से खिला हुआ,
झड़ पड़ा अचानक भूल भूल।

—मैथिलीशरण गुप्त

२. मेरे जीवन की लघुतरणी,
आँखों के पानी में तर जा।
मेरे उर का छिपा ख़जाना,
अहंकार का भाव पुराना
बना आज तू मुझे दिवाना,
तप्त श्वेत बूँदों में ढर जा।

—मुकुटधर पांडेय

३. दे रहा दीपक जलकर फूल।
रोपी उज्वल प्रभा पताका अंधकार हियहूल।

—बदरीनाथ भट्ट

ये कवि भाव-भूमि का विस्तार चाहते थे और काव्य में जीवन की अनेक दशाओं का समावेश इनका लक्ष्य था। इन्होंने कहीं-कहीं सुन्दर रहस्यात्मक संकेतों का भी प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनेक परिवर्तन लक्षित होते हैं। कभी वीरता वर्णन पर कवि सम्प्रदाय स्थिर था। इससे पूर्ण तृप्ति न मिल सकी और पौरुष से हटकर दृष्टि उधर गई जहाँ विश्व शक्ति का स्रोत है। भावना की यह पवित्रता संतों के काव्य में भरी पड़ी है। निर्गुण, सगुण ब्रह्ममूर्ति के वर्णन में ही हिन्दी साहित्य का एक काल व्यतीत हो जाता है। इन दिनों हृदय की उच्च वृत्तियाँ तो तृप्त थीं पर क्षुद्र वासनाएँ उपेक्षित थीं। यह स्थिति कब तक चलती। क्रान्ति हुई

और कवि सम्प्रदाय विलास वर्णन में लीन हो गया। रीतिकालीन कविताएँ नायिका भेद और रीति युक्त रचनाओं तक ही सीमित रहीं और यह काव्य-प्रकार भारतेन्दु के उदय तक चलता रहा। विषय के इस संकोच का बोध पहले पहल हरिश्चन्द्र जी को हुआ जिन्होंने इसके विस्तार के लिए अथक परिश्रम किया। इन दिनों अनेक विषयों पर रचनाएँ तो हुईं, पर भाषा का रूप बिगड़ गया। अँग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वानों ने भी हिन्दी में हाथ लगाया। अनेक अनुवाद ग्रंथ साहित्य में आए। भाषागत अराजकता की भी प्रतिक्रिया हुई और द्विवेदी युग में प्रधानतया इसकी सफाई का काम हुआ। कारयित्री शक्ति भाषा गत नियमों के वशवर्ती हो गई, फलतः शैली और विषय दोनो ही शुष्क हो गए। 'इस प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के निमित ही स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और 'इसी नवीन पृष्ठ-भूमि पर छायावाद की शैली स्वाभाविक रूप से विकसित हुई।

इन दिनो 'क्लासिसिज्म' की अति हो चुकी थी। द्विवेदी काल के कवि बहुत गंभीर थे और इनकी आत्मा शिष्टाचार के बन्धन से मृत हो चुकी थी। इनकी दशा भी कुछ ऐसी ही थी, जैसी पाश्चात्य विद्वान् 'चेस्टर फील्ड' की, जिसने अपने लिए कहा है "जब से मै समझने लगा, मुझे याद नहीं कि मैं कभी हँसा था।" पाश्चात्य देशो में भी इसी प्रकार 'क्लासिसिज्म' का विरोध हुआ है और तत्कालीन कलाकारों का वर्णन करते हुए, वहाँ के एक विद्वान् ने कहा है—

"अभाग्यवश इन दिनों मनुष्य उससे भी अधिक समझदार बनने की चेष्टा कर रहे थे, जितनी समझदारी के लिए कोशिश करना उचित है।"

स्वच्छन्दतावाद और क्लासिसिज्म में भेद है। रीतिवादी बुद्धिवादी होता है और स्वछन्दतावादी कल्पना-प्रिय। तुलसीदास जी प्रथम वर्ग में

आते हैं और सूरदास जी द्वितीय में। दोनों ही साधना-प्रधान संत थे पर एक बुद्धिवादी था, दूसरा कल्पनाप्रिय। गोस्वामी जी की कला समाज के हित का ध्यान रखते हुए चली; अतः उन्होंने जाग्रत कला की सृष्टि की; पर सूर ने अंतस् के प्रेम से ही सागर भर दिया। अगर इन कवियों में से दार्शनिकता और अध्यात्म का अंश निकाल दिया जाय तो ये भी पाश्चात्य रोमान्टिक कवियों से मिल सकते हैं।

रीतिवादी शास्त्रीय प्रणाली का पालन करने वाला होता है और स्वच्छन्दतावादी कल्पना युक्त नवीन उड़ानों का। 'काव्येषु माघः कवि कालिदास' इस युक्ति से यह बोध होता है कि माघ शास्त्रीय प्रणाली का कवि है और कालिदास कवित्व प्रणाली का।

रीतिवादियों का यथार्थवादियों से भी विरोध है। वस्तुतः यह विरोध स्वछंदतावाद के विरोध से कहीं अधिक बढ़कर है। यथार्थवाद में जीवन की असुन्दर और साधारण बातों को भी स्थान देने की प्रवृत्ति होती है, स्वच्छन्दतावादी भी कहीं कहीं, जीवन के असुन्दर को अपना लेता है पर रीतिवादी इसका घोर विरोधी है। वह असुन्दर से घृणा करता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का केवल इतना ही विरोध है कि पहला जीवन के वर्तमान पक्ष से दूर भागता है, जिसे दूसरा अपनाता है।

स्वच्छन्दतावादी कवि अपने साथ अपनी नवीन शैली लेकर आए। सुखात्मक और दुखात्मक दोनों प्रसंगों को संगीतमयी भाषा में लिखकर इन कवियों ने गीतों की वृद्धि में पूर्ण योग दिया। संगीत और आत्म विस्मरण ये इन कवियों की दो प्रधान विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार के कवि लाक्षणिक प्रयोगों को प्रेमपूर्वक अपनाते हैं और प्रतीकवाद में विशेष रुचि रखते हैं। शब्दों के निश्चयात्मक अर्थ की ओर इनकी दृष्टि नहीं रहती, अर्थों के स्वप्निलप्रवाह में ही ये विभोर रहते हैं। इनकी काव्यगत दृश्य-योजना सुदूर की होती है—क्षितिज के

पास की या उस पार की। ये कवि मन की असाधारण परिस्थितियों का निर्देश करते है। इनकी कोमल कल्पना कथानक में उलझ सी जाती है; अतः गीत ही इनके आश्रय हैं। कथानक निर्वाह के लिए संयत बुद्धि चाहिए। इनके मतानुसार आज की कविता छोटी होनी चाहिए, साथ ही उच्चकोटि की। आज किसके पास इतना समय है कि प्रबन्ध काव्य पढ़े। अतः प्रेम गीतों की बाढ़ आ गई। छायावाद के मूल में यही स्वच्छन्दतावाद था।

छायावाद के दो अग्रदूत हैं—स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद और पं० माखनलाल चतुर्वेदी। 'प्रसाद' की कला पाश्चात्य कला से प्रभावित है और भारतीय आत्मा मे उर्दू के ढंग की अभिव्यक्ति है। एक ने संस्कृतमयी भाषा को अपनाया है, दूसरे ने हिन्दी को, एक के गीत भावना को लेकर चलते हैं और दूसरे के चेतना को।

यो तो साहित्य में गीतों का समावेश भारतेन्दु काल से ही हो गया था, फिर भी इनका विकास छायावाद युग में ही हुआ। हरिश्चन्द्र जी ने अपने नाटकों में अनेक गेय पद लिखे है, पर ये उच्चकोटि के साहित्यिक गीत नहीं हैं।

प्रसाद ने भी गीतों को नाटकों में स्थान दिया। उन दिनों पारसी कम्पनियों के नाटक अधिक प्रचलित थे, जो बहुधा गीत-बाहुल्य होते थे। प्रसाद जी इस प्रभाव से नहीं बच सके और नाटकों के लिए, गीत रचना हुई। इन्होंने नाटकों का परिष्कार तो किया ही साथ ही गीतो का भी परिष्कार किया। उनमें कवित्व भर दिया।

कवि की यह गीत भावना झरना और लहर में स्पष्ट प्रगट हुई, जहाँ अनेक कोमल मधुर गीत हैं। महादेवी वर्मा ने गीतों में विदग्धता का अंश मिला दिया और इनके गीत प्रसाद के गीतों से भिन्न हो गए। प्रसाद में रीति काल का शृंगार शेष है, महादेवी में मीरा की साधना।

एक के गीतों में असन्तोषमयी बेदना अपनाई गई है और दूसरे के गीतों में वेदना का प्राधान्य तो है, पर असन्तोप नाम मात्र को भी नहीं है।

'प्रसाद' ने गीतों को अपनाया, महादेवी जी ने भाव पक्ष को समृद्धि दी, निराला जी ने गीतो में संगीत का उत्कृष्ट रूप रक्खा और कला पक्ष की विशेष उन्नति हुई। पन्त ने सरसता को आयोजना की। सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी जी को छोड़ और सभी से अधिक सरस हैं। उनकी यह सरसता 'वीणा' से ही व्यक्त होती है, पर गुंजन में पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

इस युग में शैली का मनोहर विकास हुआ। भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, अमूर्त्त का मूर्त्तिकरण, इन सबका प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। पदों की कोमलता पर अधिक ध्यान दिया गया। प्रकृति का स्वरूप धीरे धीरे दृढ़ होने लगा। वह मानव जीवन के अधिक समीप सी आ गई और हमारे दुःख सुख में हमारा साथ देने लगी। उन दिनों मानवीकिरण (Personification) की प्रवृत्ति का भी सम्यक् प्रचार हुआ। द्विवेदी युग के विरोध में जिन जिन विषयों को लेकर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, उनकी पूर्णतया पूर्ति हुई।

जयदेव ने लोक गीतों से प्रभावित होकर साहित्यिक गीतों की रचना की थी। उन्होंने देखा कि लोक रुचि, मधुर गीतों में अधिक रमती है। अतः 'गीत-गोविन्द' लिख डाला। लोक गीतों का प्रभाव साहित्यिक गीतों पर सर्वदा पड़ता रहता है। आज का गीत-काव्य भी इनसे प्रभावित है, विशेषकर लावनी से। लावनी की भाँति इन गीतों में भी एक पंक्ति या एक ही शब्द की, पुनरावृत्ति पाई जाती है। मन्नन द्विवेदी की 'चमेली' देखिए :—

सुन्दरता की रूपराशि तुम,
दयालुता की खान चमेली।
तुम सी कन्याएँ भारत को,
कब देगा भगवान चमेली।
चहक रहे खग-वृन्द वनों में,
अब न रही है रात चमेली।
अमल कमल कुसुमित होते हैं,
देखो हुआ प्रभात चमेली।

कहीं-कहीं यह पुनरावृत्ति ग़ज़ल के तौर पर भी है। इसके लिए रामचरित उपाध्याय की कन्हैया शीर्षक कविता देखिए।

गीतों में नवीन भावनाओं का आरोप होने लगा। आरोपित भावना जितनी ही सुन्दर होने लगी, उतनी ही गीतों की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। आगे चलकर इनमें कला का पूर्ण विकास हुआ, जिसका श्रेय निराला जी को है। नाद और संगीत की मधुरता यद्यपि सर्वप्रथम 'पल्लव' में लक्षित हुई फिर भी निराला जी ने इसमें अपने ढंग का उलट फेर किया और अतुकान्त छन्द के रूप में एक विचित्र नाद-योजना हिन्दी के समक्ष प्रस्तुत की, जो पहले यहाँ थी ही नहीं।

गीतों में चित्र-व्यंजना की भी प्रधानता हुई। कुछ समालोचकों ने इसे हिन्दी के लिए एकदम नवीन माना है और इसका प्रचार पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप बतलाया है; परन्तु बात ऐसी है नहीं। चित्र-व्यंजना की पद्धति प्राचीन है। 'मतिराम' का निम्न लिखित सवैया देखिए जिसमें कृष्ण का चित्र स्पष्ट दिखाई देता है :—

गुच्छनि को अवतंस लसै,
सिखि पच्छनि अच्छ किरीट बनायो।

पल्लव लाल समेत छरी कर,
पल्लव में 'मतिराम' सुहायो।
गुंजनि की उर मंजुल हार,
निकुंजनि ते कढ़ि बाहर आयो।
आज को रूप लखे ब्रजराज को,
आज ही आँखिन को फल पायो!

गीति लेखकों का प्रकृति से अधिक प्रेम है। पन्त जी प्रकृति में लिप्त थे। धीरे धीरे उन्हें मानव-सौन्दर्य आकर्षित करने लगा। जब उन्हें इसका बोध हुआ, वे बोल उठे—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा लोचन दूँ?
भूल अभी से इस जग को।

यह है प्रकृति के प्रति मोह जिसके फलस्वरूप उन प्राकृतिक वस्तुओं में भी सौन्दर्य-कल्पना की गई जो असुन्दर समझी जाती थीं। सनेही जी लिखते हैं—

प्यारी उस बबूल की छाया,
जिसने सोने के फूलों से,
और रजत-रंजित शूलों से,
मरकत मणिमय मृदुल दलों से
सुरतरु वैभव पाया।

बबूल भी सुरतरु बनने लगे, उनमें सोने के फूल, चाँदी के शूल और मरकत के पत्ते निकल पड़े। हृदय के सुख दुख को प्रकृति के बीच देखना छायावादी कवियों की विशेष प्रवृत्ति है। इनके सुख के जीवन में प्रकृति साथ-साथ आनन्द मनाती और दुख के समय सहानुभूति प्रदर्शित

करती है। कवि प्रकृति का मानवीकरण करके उसके साथ दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है :—

मुझसे चाँद कहा करता है
चोट कड़ी है काल प्रबल की
इसकी मुसकानों से हलकी
राजमहल कितने सपनों का
पल में नित्य ढहा करता है
मुझसे चाँद.........

—बच्चन

गीतिकारों ने अनेक कोमल, करुण मधुर भावों को अपने गीतों मे स्थान दिया है। ये कवि भावों को मानवीकरण करके, इन्हें भी मनुष्य के समान सुख-दुख से समन्वित मानते है। फिर कल्पना के आधार पर भावों का चित्र उपस्थित करते हैं। प्रसाद जी की आह देखिए कितनी सुकुमार है, यदि बाहर निकले भी तो हँसी के शीत से ठिठुर जायगी।

निकल मत बाहर दुर्बल आह, लगेगा तुझे हँसी का शीत
व्योम घन-माला में चुपचाप, तड़प ले चपला सी भयभीत,
पड़ रहे पावन प्रेम फुहार, जलन कुछ कुछ है मीठी मीर
सँभाले चल कितनी है दूर, प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर।

प्रगीतों के इस युग में भी प्राचीन पद-शैली बची रही और सत्य-नारायण जी तथा वियोगी हरि ने इसको अपनाया। 'भयो क्यों अन-चाहत को संग' 'जब नहि जात सही' इत्यादि कविरत्न जी के प्रसिद्ध पद है। वियोगी हरि जी का एक पद देखिए।—

"बताऊँ कैसे हिय की पीर!
कसक करेजे कसकत अजहूँ जैसे तीछन तीर।
हौ जु गई वा दिन फुलबगिया, बिहरनि कुसुम कुटीर।

कलित कुंज के द्वार गयो गड़ि इक काँटो बेपीर।
वा काँटे की अनी अली री, बेध्यों सकल सरीर।
जदपि कमल के सर लौं कोमल बेधत सकल सरीर।
तबहीं ते हौं दरद दिवानी बरसत नयनन नीर।
कासों कहौं मरम हरि अपनो कौन धरावै धीर।

—अनुराग वाटिका

भक्ति काल की शुद्ध चेतना और भावों का बल इन पदों में ज्यों के त्यों रक्षित हैं, यह हर्ष की बात है। साथ ही इन कवियों ने ब्रज-भाषा में ही, इन गीतों की रचना करके, प्राचीन प्रचलित परम्परा को भी बनाए रक्खा है।

कुछ कवियों ने कजली दादरा ग़ज़ल के ढङ्ग पर भी गीत रचना की। माधव शुक्ल की भारत गीतांजलि में ऐसे सब प्रकार के छन्द मिलेंगे। 'निराला' जी ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। प्रयाग के कवि पद्मकांत-जी मालवीय ने भी ऐसा ही किया है।

आज चित्रपट के गानों के अनुकरण में भी अनेक गीत लिखे जा रहे हैं, जिनमें शब्दों की व्यवस्था की अपेक्षा संगीत का अधिक ध्यान रक्खा जाता है। कहीं कहीं तो यह निराला संगीत भावों से भी बाज़ी मार ले गया है।

प्रगीतों का प्रणयन भिन्न भिन्न शैलियों में हुआ है। नाथूराम शंकर शर्मा, मैथिली शरण जी गुप्त और सनेही जी ने गीति-शैली का अपनाया है। ये रचनाएँ उच्चकोटि की नहीं हैं, यह गीति-शैली उच्चकोटि की है भी नहीं।

पत्र गीत शैली में भी रचनाएँ हुई हैं। पाश्चात्य विद्वान् हडसन ने इस प्रकार की कविता को भी गीत में माना है। बँगला कवि माइकेल

मधुसूदन दत्त ने इसी शैली में 'वीरांगना' का प्रणयन किया है और मैथिली शरण जी ने इसी ढंग पर पत्रावली की रचना की है।

कितने ही कवियों ने शोक गीत शैली का भी व्यवहार किया है। शोकोद्‌गार व्यक्त करने के लिए और विरहदग्ध चित्रांकन के लिए, यह शैली अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है। इसी शैली में 'प्रसाद' के 'आँसू' निकले हैं और सुधाकर जी ने 'शतदल' की रचना की है। पंत का सावन भादों भी इसी ढंग पर है। कवि व्याकुल होकर कहता है—

आज किसके उर में, उतारूं अपने उर का भार?
किसे अब दूँ उपहार, गूँथ यह अश्रु कणों का हार।

और किसी तरह से हृदय को वश में करने की चेष्टा करता हुआ समझाता है—

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब हृदय इस आह्वान को,
त्रिभुवन की भी श्री भर सकती नहीं।
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को।

इन गीत शैलियों के साथ सर्वत्र वेदना का प्राबल्य लक्षित होता है। भारतीय साहित्य में करुण रस की बड़ी महत्ता है। भवभूति ने तो इसे सर्वोत्तम माना है, पर आधुनिक गीतों की वेदना भारतीय करुणा से भिन्न प्रतीत होती है। यह उर्दू में दर्देदिल शैली के समान पाश्चात्य कवियों के प्रभाव से उत्पन्न हुई।

कुछ गीत लेखकों ने वर्ग विशेष के लिए गीत लिखे। भारतीय आत्मा के गीत देश भक्तों के लिए हैं—

चाह नहीं है सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्रियतम को ललचाऊँ।

मुझे तोड़ लेना बनमाली, औ देना उस पथ पर फेक।
बलिबेदी पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

गीतिकाल का एक अंश उपर्युक्त अंशों से कहीं सुन्दर और विशाल है। इन गीतों में विशुद्ध अध्यात्म के दर्शन होते है। ऐसे गीत कलाकार के विश्वास, भक्ति भावना और चित्तवृत्ति का बोध कराने वाले होते हैं। महादेवी वर्मा और रामकुमार जी के गीत रहस्यवाद से पूर्ण है।

कितने ही गीतो की प्रेरणा प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्थानो के देखने से प्राप्त हुई है। यमुना को देखकर निराला जी के मन में कितने विचार उठे हैं! दिनकर जी ने दिल्ली के प्रति क्या नहीं कहा है? इसी प्रकार 'मानव' जी ने सीकरी के लाल क़िले को देखकर कितनी सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं—

क्या इन प्रासादों के भीतर,
कुछ दिवस जली जो प्रेम ज्वाल।
उनकी रक्षित लपटों से ही,
हो गया तुम्हारा गात लाल?
जब मस्त साकिया मन रँगता था
कोमल कर से प्याली भर।
रँगती थी तब इन दीवारों को
हाला की लाली उड़कर।
इन साँय साँय करते सूने,
भवनों में धीरे चलो आह,
इनमें नाजुक बेगम सोईं,
इनमें घूमे हैं शहंशाह।

—शेफाली

आधुनिक गीतकार

इंग्लैण्ड के साहित्य में अठारवीं शताब्दी को चहकते पक्षियों का नीड़ माना गया। हिन्दी साहित्य का छायावाद युग भी ऐसे ही वैतालिकों से पूर्ण है। इस युग की चेतना न तो पूर्णतः शृङ्गारिक है और न तो शुद्ध भक्तिमयी। यह दोनों के बीच की है—अनुराग-मयी। छायावाद में शृङ्गार काल की रसात्मकता है और साथ ही भक्ति युग की तन्मयता। द्विवेदी युग में शृङ्गार को स्थान न मिल सका, भक्ति का ही सम्यक प्रचार रहा: किन्तु आगे चलकर भक्ति के साथ शृङ्गार का भी हो गया, छायावाद में दोनों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। खड़ी बोली की शरीर रचना द्विवेदी युग में हो गई थी, पर कला का विकास छायावाद काल में हुआ। इतना ही नहीं, इन दिनों अनेक नये शब्द भी बनाए गए। छायावादी कवियों की भावनाएँ इतनी सूक्ष्म थीं कि खड़ी बोली अपने शैशव में उनको कलात्मक ढंग से नहीं वहन कर सकती थी। अतः इस सौन्दर्यानुभूति के प्रसार के निमित्त शब्दों में भी काट छाँट हुई और ध्वनि तथा अर्थ माधुर्य के लिए अनेक नवीन शब्द आए।

'छायावाद' काल में मानव-चेतना स्थूल क्षेत्र परित्याग कर सूक्ष्म लोक में आ गई। अतः तत्कालीन प्रतिक्रिया पूर्णतः सफल रही। शृङ्गार काल का वह स्थूल शृङ्गार मोह कितना भयानक था जिसके प्रभाव से राधाकृष्ण भी साधारण नायिका-नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। द्विवेदी काल की इतिवृत्तात्मक कविता में वह शक्ति कहाँ थी जो इस

कुरुचि को दूर कर सके। यह यश छायावाद के अंश में था और इसका पूरा श्रेय उसी को है। इस युग में मानव की सौन्दर्य-भावना-तृप्ति के लिए प्रकृति और जीवन के सूक्ष्म सौन्दर्य असंख्य रूपों में चित्रित किए गए और विशेषता यह है कि स्थूल वासना सर्वदा अछूती ही रही। सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति और रहस्यानुभूति के आधार पर अनेक गीत लिखे गए जिनकी तेज धार में वासना-विकृत स्थूल-शृङ्गार सर्वदा के लिए बह गया।

छायावाद में न तो परम्परागत अध्यात्म का उल्लेख है और न वर्ग विशेष के सिद्धान्तो का संचय। समष्टिगत चेतना और सूक्ष्म सौन्दर्य के आधार पर ही इसकी स्थिति है। इसमें अनुभूतियों का कोमलतम मूर्त रूप, वेदना की विविधता, भावना की विचित्रता, करुणा तथा सौन्दर्य का असीम विस्तार है।

'प्रसाद' जी ने छायावाद का श्री गणेश किया और माखन लाल ने इसका प्रचार। इधर के कवियों ने इन दोनों की ही काव्य-कला का अनुकरण किया। पंत, महादेवी, रामकुमार, प्रसाद के सहयोगी हैं और भगवतीचरण वर्मा, गुरुभक्तसिंह, बच्चन, नवीन आदि भारतीय आत्मा के। वैसे देखा जाय तो यह वर्ग भेद सर्वथा पूर्ण नहीं है क्योंकि कहीं कहीं यह भेद अस्पष्ट लक्षित होता है।

—मैथिलीशरण गुप्त—

मैथिलीशरण जी गुप्त का प्रादुर्भाव द्विवेदी काल में हुआ। छायावाद का आकर्षण कुछ इस भाँति का था कि ये भी इसके प्रभाव से नहीं बच सके और इन्होंने भी गीत-रचना की तथा गीत नाट्य भी लिखा। 'झंकार' कवि की गीत पुस्तक है। 'साकेत' के नवम् सर्ग में गीत हैं। 'झंकार' मंगल घट, की अपेक्षा अधिक सरस है। इसके अनेक

गीत कवि के उपास्य राम के प्रति लिखे गए हैं—मर्यादा पुरुषोत्तम अवतारी राम के प्रति—यहाँ जीव और ब्रह्म के अनेक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। ब्रह्म महान है और जीव क्षुद्र। क्षुद्र महान से भिन्न होकर व्यग्र है और उससे मिलने के अनेक प्रयत्न करता है। पशु पक्षी भी तो उसी को चाहते हैं :—

चातक खड़ा चोंच खोले है,
संपुट खोले सीप खड़ी।
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ,
अपनी अपनी मुझे पड़ी।
किसको है किसकी परवाह,
ताक रहे सब तेरी राह।

'झंकार' में यों तो अनेक रचनाएँ हैं, पर खोज प्रतीक्षा और प्राप्ति की भावना से युक्त गीत ही अधिक है। परमेश्वर को खोजता हुआ जीव चारों ओर भटकता है और जब प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी कर अन्तर में देखता है तो उसे महान् आश्चर्य होता है—वह तो वहीं है—

"कुटी खोल भीतर जाता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ;
अतिथि कहो क्या लाऊँ मैं।"

'अनघ' में सुरभि का वह गीत जहाँ वह समय समय पर समय के साथी की प्रतीक्षा करती है, बड़ा ही मार्मिक है।

'साकेत' के गीत उर्मिला के विरह गीत हैं। भावना की तीव्रता से तो गीतों का उद्रेक होता ही है अतः नवम् सर्ग के गीत विरहिणी उर्मिला के लिए उचित हैं। इन गीतों में 'गुप्त' जी की कला अपने मनोहर रूप में सामने आई है। कुछ गीत उच्चकोटि के हैं जिन्हें देख

कर ऐसा लगता है कि कवि में साकेत-निर्माण के समय गीतिकार ही प्रधान था। यह गुप्त जी की स्वभाव-गत विशेषता है। इन्होंने वर्तमान युग की अनेक काव्य धाराओं को अपनाया है और सर्वत्र सफल रहे हैं। प्रबंध-काव्य के बीच गीतों की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है, बुद्धि और कथा की धारा में पड़े हुए पाठक को यहाँ पहुँचकर उचित आश्रय और अपूर्व आनन्द मिलता है, उसकी भाव-दशा मधुर हो उठती है।

चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि को मोह है। झाड़, पहाड़, वन्य पशु सभी उसकी ममता के पात्र हैं। विरहिनी उर्मिला चातकी से अपनी तुलना करती हुई उससे बोलने की प्रार्थना करती है। वह घटा के साथ बरसना चाहती है और खंजनों में प्रिय नेत्र का दर्शन करती है। इसके लिए बंधूक प्रिय के लाल होठों की तरह हैं और फूले कमल उनकी हँसी के परिचायक हैं।

नदी की धारा, लहरें उसके ममत्व को आकर्षित करती हैं. नदी सागर मिलन होता है पर पता नहीं वह अभागिन कब प्रिय को भेंटेगी। कमल देखकर वह प्रसन्न होती है। शिशिर के सम्पूर्ण उपकरण उसकी देह ही में वर्तमान हैं। वह पीताभा पतझड़, कम्पन सब समेटे बैठी है। उसे प्रति पत्र से मोह है। उपेक्षित उसे प्रिय है। वह भी उपेक्षित है न। इसीलिए।

कभी वह कोयल का होली राग सुनती है और देखती है कि उषा दिन के मुख पर रोली मल रही है और कभी मधुसंचय करती हुई मक्खी को वैसा करने से रोकती है। दैव को संचय खलता है इसीलिए। कोयल रोती है पर संसार उसे गान समझता है, इसे भी किसने कब ठीक से समझा। उसके भी गीत तो रोते ही हैं। इस भाँति उर्मिला अपने ही सुख दुःख से रंजित कर प्रकृति का दर्शन करती है।

इन गीतों में प्रेम की मनोहर समीक्षा है। प्रेम एकागी नहीं होता, दोनों पक्षों में प्रस्तुत रहता है। दीपक और पतंग दोनों जलते हैं, यह विचार उर्मिला से लिए कितने संताप का सृजन करता है। वह सो नहीं पाती, अतएव नींद से प्रार्थना करती है; पर विरह में नींद कहाँ! संयोग में नींद का कौन महत्व है? इसे तो वियोग में ही आना चाहिए। कभी वह अपनी विवशता बताती हुई काम से न सताने की प्रार्थना करती है, तो कभी प्रिय के और अपने सौन्दर्य पर गर्व करने लगती है। कष्ट देते हुए यौवन से शात रहने की बात कहती है। वही तो प्रिय के लिए उसका उपहार होगा। वह आँसुओं को अंचल में लेती है और वेदना की महिमा को स्वीकार करती है। वेदना हृदय को सजग रखती है न।

'गुप्त' जी के ये गीत पूर्ण सफल हैं। इनमें कवि का प्रकृति प्रेम, प्रकृति में सुख दुख दर्शन, पीड़ा से मोह, प्रेम-बाँध सब कुछ देखने को मिलता है। ये गीत दोनों ही प्रकार के हैं, प्राचीन पदों की तरह और नवीन गीतों की भाँति।

'गुप्त' जी के गीतों में कुछ दोष भी हैं। इन्होंने तुक के आग्रह से शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है, साथ ही कुछ ग्रामीण और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी कर दिया है, जो सौन्दर्य के लिए घातक है।

—जयशंकर प्रसाद—

द्विवेदी युग की कविताएँ प्रबन्धमयी होती थीं, उन दिनों मुक्तकों की कोई भी महत्ता नहीं थी। पर बाबू जयशंकर प्रसाद कथानक और गीत दोनों को लेकर चले हैं, यह उनकी विशेषता है। 'प्रसाद' जी ने मुक्तकों को अपनाया और चित्राधार प्रस्तुत किया, जो गीतों के रूप में है। 'कानन-कुसुम' अनेक कविताओं का संग्रह मात्र है, जिसमें विभिन्न

प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसके अनन्तर 'झरना' की सृष्टि हुई और इसी समय से 'छायावाद' का विकास मानना चाहिए।

'झरना' में प्राचीनता और नवीनता दोनों के एक साथ दर्शन होते हैं। जहाँ कवि ने प्राचीन छन्दों का प्रयोग किया है, वहीं छन्दों के नवीन प्रयास भी लक्षित होते हैं। यहाँ कवि ने लौकिक प्रेम की चर्चा की है और उसके कुछ गीत भागवत-भावना से भी युक्त दिखाई देते हैं और कहीं कहीं उपासना के प्राचीन रूप के प्रति क्रान्ति की भावना भी व्यक्त हुई है। 'झरना' से ही कवि की प्रगति नवीनता के क्षेत्र में प्रारम्भ हो जाती है। उसने प्रकृति वर्णन आलंबन मानकर भी किया है और उसमें सुख दुख के दर्शन भी किए हैं। उसके हृदय का झरना प्रकृति के झरने के पूर्णतः अनुकूल है। मिलन-काल में कवि गाता है :—

"दृष्टि पथ में सृष्टि है आलोक मय,
विश्व वैभव से भरा यह धन्य है।"

कवि प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा प्रेमी है—चाँदनी रात उसे विशेष आकर्षक प्रतीत होती है—

'झरना' मे जहाँ 'खोलो द्वार' जैसी रहस्यमयी कविताएँ हैं, वहाँ लौकिक प्रेम की भी विशद व्याख्या की गई है। कवि प्रेमास्पद की हँसी और टेढ़ी चितवन की हँसी को झेल चुका है—उसे तो प्रेम का बोध ही नहीं था। जब कठिन नखरेख लगे तब उसने समझ पाया। वह स्वयं जलता है, विरह में व्यथित है—

"जिसे चाह तू उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन मन से छाती छाती से भरपूर।"

'झरना' मे भावनाओं का मूर्तीकरण भी किया गया है। कहीं-कहीं उर्दू और फ़ारसी का प्रभाव भी पड़ा है—

'आँसू' कवि की सफल गीति-रचना है। इसके गीत वियोगी के उद्‌गार हैं, जिनमें स्मृति के आधार पर मिलन के चित्र अंकित किए गए हैं। 'आँसू' मे कवि उसी नवीनता के पथ पर अग्रसर होता हुआ दिखाई पड़ता है, जिस पर वह 'झरना' में ही चल चुका था।

प्रकृति का चित्रण सहानुभूतिपूर्ण है और उसमें अपने सुख दुःख की छाया देखने की सफल चेष्टा की गई है—

"क्यों छलक रहा दुख मेरा,
ऊषा की मृदु पलकों में,
हाँ! उलझ रहा सुख मेरा,
सन्ध्या की घन अलकों में।"

'आँसू' में वेदना का प्राधान्य है। यह विरहजन्य वेदना सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है, क्योंकि प्रणय व्यापार केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, वह तो विश्व व्यापी है—

"देखो बौने जलनिधि का,
शशि छूने को ललचाना,
वह हाहाकार मचाना,
फिर उठ उठ कर गिर जाना।"

अतएव कवि ने वेदना की बड़ी सुन्दर प्रशस्ति प्रस्तुत की है। 'प्रसाद' की वेदना अपना विशेष महत्व रखती है, क्योंकि उससे कवि को अकर्मण्यता के बदले कर्तव्य-चेतना मिली है—ज्यों ज्यों समय बीतता गया है, वासना सोती गई है और कर्तव्य जगाता गया है।

रात भर के विरह का कवि ने बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है। रजनी की बढ़ती हुई शून्य घड़ियों के साथ विरह वेग भी किस गति से बढ़ता जाता है, यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विरह का प्राधान्य आँसू के विषम प्रेम की पुष्टि करता है, जो फारसी उर्दू के कवियों के यहाँ प्रचुर

मात्रा में रक्षित हैं—'प्रसाद' की प्रेम-पद्धति ही नहीं, उनके अन्य विचार भी फारसी के साहित्य से प्रभावित हैं—

"छिलछिलकर छाले फोड़े,
मल मल कर मृदुल चरण से।
घुल घुल कर बह रह जाते,
आँसू करुणा के कण से।"

जब हम यह देखते है कि कवि का हृदय-कमल अलि अलकों की उलझन में घिर गया है तो हमें सहसा उर्दू के शायरों की जुल्फों में उलझने वाली बात याद आ जाती है। 'पुल्लिग' के लिए घूंघट और 'दीपक' की व्यवस्था निश्चय ही फारसी का प्रभाव है। कवि का वेदना के प्रति मोह शायद इसी प्रकार का है—

"दर्द में जाने न कितनी लज्जतें पाता है दिल।
जब कमी महसूस होती है तो घबराता है दिल।"

कहीं कहीं कवि ने भावनाओं को मूर्त रूप दिया है और विरोधात्मक दृश्यों को प्रस्तुत कर अभिव्यंजना की विशिष्ट शैली का परिचय दिया है। सुख दुख से उदासीन होकर दोनों को मिलाकर जीवन में ढाल लेने की बात भी 'आँसू' में कई स्थानों पर कही गई है और यही भावना कामायनी में पूर्णतः विकसित हुई है। आँसू का प्रत्येक चित्र वैभव की पीठिका पर सुशोभित है।

'लहर' में भौतिक प्रेम के भी चित्र हैं और रहस्यमय प्रेम की भी छटा उपस्थित है। कभी कवि अधीर यौवन का स्मरण कर आह भरता हुआ कहता है—

"अधर में वह अधरों की प्यास,
नयन में दर्शन का विश्वास।"

अज्ञानांधकारमय जगत से ऊबकर प्रार्थना करता है—

"जग की सजल कालिमा रजनी में मुख चंद्र दिखा जावो।"

यहाँ प्रकृति का वर्णन बड़ा ही सजीव हुआ है और उसके विभिन्न व्यापारों में व्यापक-प्रेम का दर्शन किया गया है—

"जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।"

कहीं कहीं प्रकृति भी दुखी है। अशोक देखता है—

"करुणा गाथा गाती है।
वायु बही जाती है।"

यहाँ वेदना की विश्व व्यापकता, पीड़ा से प्रेम और कवि का अभाव-बोध यह सब भरा पड़ा है, और कवि स्पष्ट रूप से बौद्ध दर्शन से प्रभावित हुआ है।

भावनाओं के मानवीकरण की कला 'प्रसाद' को विशेष प्रिय है। इसका प्रयोग 'लहर' मे भी सफल रीति से किया गया है।

इस पुस्तक में अनेक नवीन छन्दों की बड़ी ही मनोरम छटा लक्षित होती है। प्रकृति के रूपक के सहारे कुछ गीत तो बड़े ही उत्तम बन गए हैं जैसे :—

"बीती विभावरी जाग री।"

'लहर' में 'आँसू' की अपेक्षा वासना की कमी स्पष्ट दिखाई देती है। यह कवि की संगीतमय रचना है।

'कामायनी' के गीत 'इड़ा' सर्ग के अन्तर्गत हैं। इनमें बुद्धि के सहारे जीवन के उद्गम, उसके दुःखमय स्वरूप पर विचार किया गया है। मनु श्रद्धा को भूल जाते हैं—काम इसके लिए मनु को शाप देता

है जिसके फलस्वरूप मनु का प्रजातंत्र शाप से पूर्ण हो जाता है, उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती। इन गीतों में उषाकाल का मनोहर चित्र अंकित है।

श्रद्धा का एक गीत निर्वेद में है। मनु इड़ा से अनाचार की इच्छा करते हैं। प्रजा क्षुब्ध होती है और मनु युद्ध में घायल हो जाते हैं। इस दुखद परिस्थिति मे श्रद्धा मनु को खोजती हुई उन तक पहुँच जाती है। यहाँ श्रद्धा एक गीत गाती है जो उच्चकोटि का है। बुद्धि के चक्कर में पड़ा असफल व्यक्ति कहीं भी शान्ति लाभ नहीं कर पाता। उसे यदि शांति मिलती है तो श्रद्धा ही में। वास्तव मे श्रद्धा उनीदी और थकी चेतना के लिए मलय-बात है। विषाद तिमिर मे भूले मन के लिए उषा-ज्योति है, प्रातःकाल है, दुःख-ज्वाला से दग्ध विश्व के लिए मधु-रजनी है; अतः उससे मनु को पूर्ण संतोष प्राप्त होता है। घायल मनु को प्रसन्न करने के लिए उनकी पीड़ा को धीरे धीरे दूर करने के लिए तथा पश्चाताप की स्मृति को धुँधली बनाने के लिए प्रसाद की यह गीत-योजना पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। 'साकेत' में भी गीत हैं और कामायनी में भी, पर साकेत के गीत बहुधा भाव प्रधान हैं और निर्वेद सर्ग के श्रद्धा वाले गीत को छोड़कर कामायनी के इड़ा-सर्ग के गीत बुद्धि-प्रधान हैं। नाटकों के अन्तर्गत गीतों के प्रवेश का श्रय प्रसाद जी को ही प्राप्त है। कुछ विद्वानों ने इसे पारसी नाटक मंडलियों का प्रभाव माना है। इन्होने नाटकों के साथ गीतो का भी परिष्कार किया। पर जिस तरह से इनके नाटक साधारण दर्शको की समझ से परे हैं उसी तरह उनके गीत भी। कुछ गीत तो स्वतंत्र मुक्तक से हैं और इनका नाटकों से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। लेकिन यह बात सर्वत्र नहीं है। ये गीत भाव-गांभीर्य के कारण कहीं कहीं क्लिष्ट हो गए हैं और नाटकों से असंबंधित मालूम होने लगते हैं।

स्कंदगुप्त के गीतों में वेदना का प्राधान्य है। कुछ गीत भगवान की प्रार्थना के रूप में भी आए हैं। 'विजया' के गीतों में अतृप्ति की भावना लक्षित होती है। देवसेना का अन्तिम गीत 'आह वेदना! मिली विदाई' बड़ा ही करुण है। यहीं एक गीत में प्रसाद ने आर्यों के आदि स्थान के विषय में भी सोचा है। इसी गीत में कवि का अगाध देश-प्रेम उमड़ा पड़ता है।

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरकहार।
जगे हम लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम तम पुँज हुआ तब नष्ट अखिल संसृति हो उठी अशोक।

'चन्द्रगुप्त' के गीत प्रेम की व्याकुलता से पूर्ण हैं और इसी प्रकार अन्य नाटकों के भी। यह सौंदर्य का लज्जापूर्ण चित्र कितना मधुर है—

"तुम कनक किरन के अन्तराल से,
लुक छिपकर चलते हो क्यों,
नतमस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस कन ढरते,
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों।"

'एक घूँट' कवि की आनन्द पूर्ण रचना है, जहाँ जीवन के अंग-प्रत्यंग को आनन्दमयी दृष्टि से देखा गया है। 'प्रसाद' का आनन्दवाद निश्चय ही शैवागम से प्राप्त हुआ है।

'प्रसाद' के काव्य में अमूर्त के लिए मूर्त योजना तो है ही, साथ ही मूर्त के लिए अमूर्त भी प्रस्तुत किए गए हैं जैसे "बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।" इनके गीत संगीत पूर्ण हैं जिनसे कवि के संगीत ज्ञान का पता चलता है। कहीं कहीं शब्द-चित्र बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं।

इनके गीत यौवन की उद्दाम लालसा से पूर्ण हैं, जहाँ प्रेम की विशद विवेचना प्रस्तुत की गई है। कवि की सौन्दर्य वृत्ति जगत और जीव दोनों ही क्षेत्रों में अनेक मनोहर दृश्य प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकी है।

भाषा अधिकतर सांकेतिक है और भाव, विचार, एवं कल्पना का मनोहर योग हो गया है। कहीं कहीं लाक्षणिकता का अतिक्रमण कर दिया गया है।—

"अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना,
भीगी पलकों का लगना।"

कहीं कहीं अनुचित शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है जिससे सौन्दर्य में व्याघात उपस्थित हो जाता है—

मुसुक्याय, डुब्बी, सुखला, बिन, खेवा ऐसे ही शब्द हैं।

कहीं कहीं ऐसे मुहावरों का प्रयोग कर दिया गया है जो सुरुचि-पूर्ण नहीं है जैसे :—

"विश्व भर का भी हो व्यवधान,
आज वह बाल बराबर नहीं।"

'प्रसाद' के गीतों में 'प्रसाद' गुण का अभाव लक्षित होता है और कहीं कहीं द्विवेदी युग का संस्कार भी दिखाई दे जाता है।

—सुमित्रानंदन पंत—

माधुर्य और छायावाद की वांछित प्रांजलता श्री सुमित्रानन्दन पंत के गीतों में ही सर्वप्रथम आ पाई है। पंत जी की 'वीणा' में अनेक सरल और माधुर्यपूर्ण गीत हैं जहाँ भावों की उच्चता के साथ ही भाषागत

माधुर्य का मधुर रूप वर्तमान है। 'वीणा' में कवि ने अपने को बालिका माना है और परमशक्ति को माँ। यह बालिका और माँ की व्यवस्था उचित ही है क्योंकि 'वीणा' कवि की प्रारंभिक रचना है। यहाँ विश्व-भावना और सेवा भाव की भी कमी नहीं है—

"कुमुदकला बन कलहासिनि,
अमृत प्रकाशिनि नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ,
जग का तिमिर त्रास हर दूँ,
नीरव रजनी में निर्भय।

"कृष्णा" "कालाबादल" वीणा की उत्तम रचनाएँ हैं।

'पंत' जी रहस्यवाद के प्रेमी है। विश्व को देखकर उनको जिज्ञासा होती है—

"मैं चिर उत्कंठातुर,
जगती के अखिल चराचर।
यों मौन मुग्ध किसके बल॥"

रहस्यमयी शक्ति उन्हें आकर्षित करती है। वे उसे अच्छी तरह जानते हैं—

"कभी उड़ते पत्तों के साथ, मुझे मिलते मेरे सुकुमार,
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ, बुलाते फिर मुझको उस पार।"

वह रहस्यमय प्रिय सर्वत्र छिपा हुआ है। नक्षत्रों और लहरों से कवि को बहुधा संकेत मिलते हैं। वह उस परम शक्ति का अनुभव अवश्य करता है; पर उसे ठीक-ठीक नहीं जानता—

"न जाने कौन अये द्युतिमान।
जान मुझको अबोध अज्ञान॥

सुझाते हो तुम पथ अनजान।
फूँक देते छिद्रों में गान॥
अहे सुख दुख के सहचर मौन।
नहीं कह सकती तुम हो कौन॥"

जहाँ सृष्टि को देखकर कवि का कौतूहल जाग उठता है, वहीं मानव जीवन भी उसके लिए एक पहेली बन जाता है। "परिवर्तन" में तो पंत जी ने बहुत अधिक चिन्तन किया है। जीवन में 'मिलन' का कोई स्थान नहीं। यहाँ तो विरह की प्रधानता है। जीवन परिवर्तनमय है। चेष्टा करने पर भी हम सब कुछ नहीं जान पाते। 'गुंजन' में पंतजी ने जीवन के अनेक अंगों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। मानव जीवन हास-अश्रुमय है अतः कवि को सुख और दुख दोनों का महत्व प्रतीत हो जाता है। इनमें अगर किसी की भी अति हो जाती है तो आनन्द जाता रहता है। दुःख भी जीवन के लिए आवश्यक है। आत्मोन्नति के लिए उसकी बड़ी उपयोगिता है।

"दुख इस मानव आत्मा का,
रे नित का मधुमय भोजन।"

मानव-जीवन वांछनीय है; इसमें बहुत आनन्द है। जग-जीवन परम सुन्दर है :—

"सुन्दर से अति सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्तरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे,
सुन्दर सुन्दर जग जीवन॥"

विश्व भावना और सेवाभाव से पंत जी की कविताएँ ओतप्रोत हैं। जीवन की सफलता इन्हीं में तो है। अतः यही कवि की हार्दिक अभिलाषा है—

"विश्व-प्रेम का रुचिकर राग,
पर-सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली सी,
माँ न मन्द पड़ जाने दे।"

'पंत' जी की कविताओं में शृङ्गार की प्रधानता है, पर यह रीति-कालीन कवियों के शृङ्गार से भिन्न है।

'पल्लव' में प्रेम का प्रबल प्रवाह है। यहीं कवि ने पीड़ा का अनुभव किया है, जिसके फलस्वरूप उसके गान निःसृत हुए है। प्रेम में कितनी व्याकुलता होती है—

"आह किसके उर में,
उतारूँ अपने उर का भार।
किसे अब दूँ उपहार,
गूँथ यह अश्रु कणों का हार।"

प्रेम तो श्वास की तरह सबके हृदय में व्याप्त है।

नारी रूप कवि के आकर्षण का केन्द्र है, जिसकी प्रशस्ति अनेक स्थलों पर दिखाई देती है—

"तुम्हारे रोम रोम से नारि,
मुझे है स्नेह अपार।
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि,
मुझे है स्वर्गागार॥"

'गुंजन' का शृङ्गार अधिक सूक्ष्म तथा सुरुचिपूर्ण है, यद्यपि यहाँ भी कहीं कहीं उसका स्थूल रूप दिखाई दे जाता है—

"मिलें अधरों में अधर समान,
नयन से नयन गात से गात।

पुलक से पुलक प्राण से प्राण,
भुजों से भुज कटि से कटि शात।"

'भावी पत्नी के प्रति' शृङ्गार की अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है। इस कोटि के गीत हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम हैं।

'प्रथम मिलन' का काल्पनिक चित्र रीति कालीन कवियों के 'प्रथम-समागम' के चित्र के कहीं अधिक रम्य है।

कवि को स्वप्नो से मोह है जो कि कल्पना की विशेपता के साथ अधिक उचित प्रतीत होता है—

"पलक-यवनिका के भीतर छिप, हृदय मंच पर छा छविमय।
सजनि अलस के मायावी शिशु खेल रहे कैसा अभिनय।।

पंत जी की कविताओं में वर्तमान रूढ़ियों के प्रति क्रान्ति की भावना निहित है। वे जीर्ण, शीर्ण, प्राचीन, पुरातन का नाश चाहते हैं। कोकिल से कहते हैं—

"गा कोकिल बरसा पावक करण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस, भ्रंश जग के जड़-बन्धन।।"

ताजमहल के सौन्दर्य से कौन नहीं प्रभावित हुआ है। 'टैगोर' जैसे कवियों ने भी इसकी प्रशंसा के गीत गाए हैं। उसी 'ताज' के प्रति पंत जी कहते हैं—

"मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान प्रेत औ छाया से रति।।"

यहाँ प्रगतिवादी कवियों जैसी क्रान्ति की भावना प्रस्तुत है।

'पंत' जी प्रकृति के कवि हैं। इन्होंने अपनी काव्य कला के प्रसार के लिए प्रकृति का क्षेत्र चुना है। इन्हें प्रकृति से अधिक मोह है। कवि द्रुमों की मृदु छाया छोड़कर तथा प्रकृति से माया तोड़ कर

बाला के बाल-जाल में उलझना नहीं चाहता। वह छाया से बाँह खोल कर मिलने की इच्छा रखता है और अपने हृदय के उल्लास का प्रकृति के बीच दर्शन करता है—

"इस तरह मेरे चितेरे हृदय की,
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी।"

वह एक ही दृश्य को अपनी रुचि के अनुसार कभी प्रफुल्ल देखता है और कभी म्लान।

कभी चाँदनी प्रसन्न है—

"वह स्वप्न जड़ित नत चितवन,
छू लेती अग-जग का मन।
श्यामल कोमल चल चितवन,
लहरा देती जग जीवन॥"

और कभी—

"रे म्लान अंग रंग यौवन,
चिर मूक सजल नत चितवन।
जग के दुख से जर्जर उर,
बस मृत्यु शेष अब जीवन॥"

उसे अपना जीवन भी पक्षी के जीवन जैसा प्रतीत होता है—

"है स्वर्ण नीड़ मेरा भी जग-उपवन में,
मैं खग सा फिरता नीरव भाव-गगन में।
उड़ मृदुल कल्पना पंखों में निर्जन में,
चुगता हूँ गाने बिखरे तृण में कण में॥"

प्राकृतिक दृश्यों को देखकर प्रेयसी की याद आती है—

देखता हूँ जब पतला,
इन्द्रधनुषी हलका,

रेशमी घूँघट बादल का,
खोलती है कुमुद कला,
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान,
मुझे करता तब अन्तर्धान !"

वह मधु की नव कलियों के साथ खिलना चाहता है और हँसमुख प्रसूनों से हँसना सीखता है तथा मानव-सौन्दर्य में प्रकृति जैसी सुन्दरता देखता है—

"उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस।"

'पल्लव' और 'गुंजन' में कई बड़ी बड़ी कविताएँ भी हैं जैसे—"अनंग" -"परिवर्तन",, "एक तारा" "अप्सरा" "नौका विहार।" "एक तारा" और "नौका विहार" में उत्तम प्राकृतिक चित्रण के साथ ही दार्शनिक भाव भी वर्तमान हैं। 'अप्सरा' सुर नर मुनि ईप्सित है और त्रिलोक व्यापिनी है। वह बालक के लिए कौतूहल, युवा के लिए प्रेम की स्रोत है।

'पंत' जी के गीत उच्चकोटि के संगीत से भरे पड़े हैं। इन्होंने अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। 'सन्ध्या' 'पवन-गीत' 'निर्झरी' 'मधु-स्मृति' 'ओस का गीत' 'जीवन' 'वसन्त' 'मंगल-गान' संगीत के उत्तम उदाहरण हैं। इन्होंने माधुर्य के लिए कहीं कहीं नवीन शब्दयोजना प्रस्तुत की है—

"धूम-धुंआरे काजर कारे हम ही बिकरारे बादर।
मदन राज के वीर बहादर पावस के उड़ते फणिधर॥

कवि ने 'छाया' 'अंधकार' 'सन्ध्या' सबको मूर्त-रूप प्रदान किया है

और कहीं कहीं मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग भी किया है। प्रेयसी को "चन्द्रिका की झंकार" कहा है। कहीं कहीं विचित्र शब्द देखने को मिलते हैं जैसे :—

"भय से पीले तरु के पात,
भगा बावलों से वे आप,
करते नित नाना उत्पात।"

और कई स्थानों पर व्याकरण के नियम भी तोड़ दिए गए हैं।

'पंत' जी के गीत प्राकृतिक-सौन्दर्य से पूर्ण हैं जिन्हें उन्होने बिना प्रयास स्वाभाविक ढंग से गाया है।

'ग्राम्या' में कवि का ग्रामीण-जीवन बोध दिखाई देता है। यहाँ ग्रामीण-जीवन का अध्ययन दूर से ही किया गया है। इसे कवि ने स्वीकार भी किया है।

गाँवों में सुन्दरता नहीं है। यहाँ लोग भूखों मरते हैं और नंगे रहते हैं, बच्चे कीड़ों की तरह रेंगते है और युवा-प्राणी वृद्ध से प्रतीत होते हैं। यहाँ जीवन की दुर्गति ही दिखाई देती है। प्राकृतिक सौन्दर्य प्रचुर रूप में दृष्टिगोचर होता है पर मानव जीवन पूर्णतः कुरूप ही रहता है। बच्चों को देखकर कवि सोचता है—

"इन कीड़ों का भी मनुज बीज;
यह सोच हृदय उठता पसीज!
मानव प्रति मानव की विरक्ति,
उपजाती मन में क्षोभ खीज।"

इस विरूपता के साथ कहीं कहीं सौन्दर्य भी दिखाई दे जाता है। ग्राम युवती को देखकर कवि की सौन्दर्य-भावना जाग जाती है। उसे धोबियों के नाच में आनन्द मिलता है। ग्राम-श्री, गङ्गा और चमारों का नाच सब कुछ आकर्षक प्रतीत होता है।

'ग्राम्या' में महात्मा जी के प्रति कई कविताएँ लिखी गई हैं। चरखा-गीत भी है और अहिंसा की बात भी कही गई है।

बापू तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नहीं जावोगे मानव के बन्धन?

नीचे की पंक्तियों में साम्यवाद है।—

मिलकर जन निर्माण करें जग,
मिलकर भोग करें जीवन का।
जन विमुक्त हों जन-शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का।

"राष्ट्र-गान" देश-भक्ति से पूर्ण हैं। कुछ गीत क्रान्तिपूर्ण हैं—

"ध्वंस करो, भ्रंश करो, खंडहर हैं ये खंडहर।
खोलो विगत सभ्यता के क्षुद्र वसन नारी नर॥"

एकाध स्थल पर आधुनिक नारी रूप की निंदा की गई है।

कहीं कहीं सत्य परिस्थिति का चित्रण नहीं हुआ है जिसे देखने से पता लगता है कि कवि ग्रामीण-जीवन से पूर्ण परिचित नहीं है—

"रोना गाना यहाँ चलन भर,
आता उसमें उभर न अंतर।
लो अब गाड़ी चल दी भर भर,
बतलाती धन पति से हँसकर।"

यदि ध्यान से देखा जाय तो बात ऐसी नहीं है। सहृदयता और संकोच अब भी गाँवों में अधिक मात्रा में वर्तमान हैं। कई स्थानों पर अंग्रेजी नामों का प्रयोग अनुचित प्रतीत होता है। जैसे—"स्वीट पी" "कार्नेशस" 'पापी" आदि। और कुछ ग्रामीण शब्द भी आए हैं जैसे :—"बतियाकर" "बिसर" आदि—

'ग्राम्या' के कवि का विश्वास है कि गाँवों से ही भविष्य में समाज-

निर्माण होगा। कुरूपता के साथ साथ भावी सृष्टि भी छिपी है। यहाँ सुन्दर और असुन्दर दोनों की उपस्थिति लक्षित होती है। स्त्री में स्वर्ग, मादकता और नरक तीनों दिखाई देते है। गाँवों की दुर्दशा का वर्णन कहीं-कहीं अति की सीमा तक पहुँच गया है। ऐसे स्थलों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'ग्राम्या' किसी विश्वास के प्रचार के लिए लिखी गई हो। पहले का कवि इसी ग्रामीण जीवन के लिए तरसा करता था और पंत जी इससे इस प्रकार भयभीत हो गए हैं कि प्रकृति की गोद में छिप जाना चाहते हैं—

"वहीं कहीं जी करता मै जाकर छिप जाऊँ।
मानव-जग के क्रन्दन से छुटकारा पाऊँ।
प्रकृति-नीड़ में व्योम-खगों क गाने गाऊँ,
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊ।।"

'स्वर्ण-किरण' का कवि भारतीयता से विशेष प्रभावित लक्षित होता है। अब भी रहस्यमयी सत्ता के प्रति जिज्ञासा बनी हुई है। वह कुछ देखकर प्रश्न करता है—

"कौन गहन के अवगुण्ठन से झाँक रहा वह हँस हँस भू पर।"

यहाँ विशेष कर मानव-जीवन कवि के चितन का विषय है जो कि व्यक्तिगत न रहकर जग-जीवन की ओर विकसित हो रहा है। मानवता अब भी अन्तर्जीवन के महत्व से अपरिचित है। उसमें मध्यम और अधम वृत्तियों का ही समावेश हो सका है। अतः कवि दैवी वृत्तियों के प्रसार की कामना करता है जिसके संगीत में धरती के भेद-भाव प्रसूत क्रन्दन को दबा देने की शक्ति है। जीवन में दुःख की अधिकता है, न जाने क्यों ? 'कौवे के प्रति' में कवि ने यही प्रश्न पूछा है जिसका कौवे ने यों उत्तर दिया है—

'काम काम है तापों का कारण था उसका आशय।'

और—

'पक्षपात है नाम कामना का जो दुख की कारण'

सौन्दर्य, आनन्द इनका भी जीवन में अभाव ही है, यह बात भी उसकी समझ में नहीं आती—

'सुन्दरता आनन्द प्रेम के स्वप्न चिरन्तन,
क्या केवल प्रभात के उडगन रिक्त शरद घन।'

आज भेद-भाव प्रबल होता जा रहा है। जाति-पाँति, देश, प्रान्त सब भेद-ग्रस्त है। इन सबको दूर करने के लिए प्राचीन वैदिक पद्धति में मानव-जीवन को ढालना होगा। वही आदर्श-जीवन होगा, उसी की कवि कामना करता है—

"असत तमस ओ मृत्यु सलिल में हमें पारकर,
सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो जीवन ईश्वर।"

कवि का स्वदेश प्रेम है। वह स्वदेश को ज्योति भूमि मानता है जहाँ सर्वप्रथम सभ्यता अवतीर्ण हुई थी।

सविता' और 'पूषण' के प्रति लिखी गई कविताएँ पौराणिक ढंग की हैं और द्वासुपर्ण में आत्मा और जीव को दो पक्षियों के रूप के माना गया है जो अनादिकाल से विश्व वृक्ष पर एक साथ बैठे हुए हैं।

कवि ने 'स्वर्ण-किरण' में आदर्श नारी-रूप रखा है। वह पुरुष से कहती है—

"तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए।
प्रेम तुम्हें देती मैं अबला,
मुझको घर की क्षेम चाहिए।"

कवि हिमाद्रि से अधिक प्रभावित है। शैशव से ही हिमालय उसका गुरु रहा है और उसके प्राण उससे प्रेरणा पाते रहे हैं।

इस पुस्तक में स्वर्णोदय सबसे लम्बी कविता है। इसमें जीवन-सौन्दर्य की विवेचना की गई है। शैशव में बच्चे सबकी प्रीति के पात्र होते हैं। उन्हें परियों की कथाएँ सुनाई जाती है। धीरे धीरे परियाँ अदृश्य हो जाती है और राजकुमारों की कौतूहल पूर्ण कहानियाँ भी। युवक को संसार सुखमय प्रतीत होने लगता है, और मदोन्मत्त यौवन के प्रभाव से कामिनी उसके नेत्र चकित करने लगती है। वह किसी से प्रेम करने लगता है और फिर प्रेमी-प्रेमिका पति-पत्नी बन जाते हैं। युवा-व्यक्ति संसार की अनेक कुप्रथाओं को रोकने की चेष्टा करता है और क्रान्ति-भावना से युक्त हो जाता है। धीरे धीरे सन्तानोत्पत्ति होती है और जीवन में चिंतन की प्रधानता होती जाती है। जीवन का मूल स्रोत क्या है? यह जानने की प्रबल जिज्ञासा जगती है और वह जान पाता है कि आत्मा मुक्त चिरन्तन है। धीरे धीरे वार्धक्य के साथ साथ उसकी ज्ञानेच्छा बढ़ती जाती है और उसे जीवन का तत्व समझ में आने लगता है। केवल ज्ञान से ही प्रत्येक जिज्ञासा का समाधान नहीं होता क्योंकि गूढ़ और अभेद्य रहस्यों पर जीवन की गति निर्भर है। एक दिन वह भगवान में मिल जाता है। इस प्रकार उसका अन्त होता है। यहाँ 'पन्त' ने जीवन को अधिक निकट से समझने की चेष्टा की है और उसके मौलिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है।

'अशोक-वन' में कवि की राम-भक्ति लक्षित होती है। उसके राम त्रिभुवन गेही हैं। यहाँ राम, सीता, रावण सबका बुद्धि-सम्मत रूप प्रस्तुत किया गया है। सीता को धरती की आकांक्षा कहा गया है। दुखी राक्षसियों के कष्ट को देखकर सीता आर्द्र हो जाती हैं। यह उनका नवीन रूप है। कहीं कहीं गोस्वामीजी की पंक्तियाँ ले ली गई हैं जैसे:—

"कठिन भूमि कोमल पद गामी,
बन में थे प्रिय संग भव स्वामी।

जिय बिन देह नदी बिन बारी।
होगी प्रिय बिन वह सुकुमारी ॥"

'खादी के फूल' के पहले के पन्द्रह गीत महात्मा जी की पुण्य स्मृति में लिखे गए हैं। इनमें उनके जीवन की झलक है। कवि बापू के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर नव-निर्माण की कामना करता है।

जनमत पर गांधी जी का कैसा प्रभाव है, इसे गीत-लेखक ने खूब समझा है। ये गीत गम्भीर और उत्तम हैं।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त के कवि जीवन का अवस्था के साथ विकास हुआ है। 'वीणा' 'पल्लव' और 'गुंजन' के गीतो में क्रमशः भोलापन, यौवन और चितन लक्षित होता है। 'ज्योत्स्ना' में भी अनेक मधुर गीत हैं। 'युगान्त' और 'युग वाणी' का कवि विरोध-वृत्ति से युक्त लक्षित होता है। उस पर गांधीवाद का प्रभाव बढ़ने लगता है और काल्पनिक लोक के स्थान पर प्रत्यक्ष जीवन आ जाता है। 'ग्राम्या', ठोस जीवन-बोध की पूर्ण रचना है—जहाँ कवि देश के एक विशेष अंश की दुर्दशा देख क्षुब्ध हो उठता है। 'स्वर्ण-धूलि' 'स्वर्ण-किरण' प्रभृति रचनाओं में भारतीयता, देश-प्रेम और जीवन की गूढ़ विवेचना पाई जाती है। कवि को इस प्रकार धीरे धीरे तत्व-बोध होता जाता है और यह बोध-क्रम पूर्णतः स्वाभाविक है।

प्रारम्भिक पुस्तकों में 'पंत' जी अधिक मधुर हैं और इधर दार्शनिक होते जा रहे है। निश्चय ही इधर के लिखे गीत अधिक ठोस हैं और उनमें सत्य का विशेष अंश पाया जाता है। कवि का इस नवीन दिशा की ओर बढ़ना बड़ा ही संतोषप्रद और सराहनीय है।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—

छायावादी गीतिलेखको में पं० सूर्यकांत जी त्रिपाठी 'निराला' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस कवि का स्वरूप क्रांतिकारी और सर्वथा

मौलिक रहा है, जिसकी स्वयं पं० सुमित्रानन्दन पंत ने इस प्रकार वन्दना की है:—

'छंद बंध ध्रुव तोड़ फोड़ कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की कवि तेरी कविता धारा
मुक्त अबाध अमंद रजत निर्झर सी निःसृत

'अनामिका' कवि की प्रसिद्ध रचना है। इसके प्रणयन का काल सन् १९२३ ई० के लगभग है। इसकी अनेक कविताओं पर विवेकानन्द और 'टैगोर' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। 'सखा के प्रति' और 'नाचे उस पर श्यामा' विवेकानन्द से प्रभावित कवितायें हैं और 'ज्येष्ठ' 'क्षमा' 'प्रार्थना' आदि 'टैगोर' से। इस पुस्तक में कवि ने असम तुकांत छन्दों का भी प्रयोग किया है जो उसकी मौलिक सूझ है।

'अनामिका' की अनेक कविताओं में देशप्रेम का अत्यन्त गम्भीर स्वर है। कुछ कवितायें जीवन के सुख-दुख को भी लेकर लिखी गई हैं।

'परिमल' कवि की दूसरी रचना है। इसका रचना काल सन् १९३० ई० है। इसके तीन खंड हैं। प्रथम खण्ड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें रखी गई हैं, द्वितीय खण्ड में विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताओं का स्थान है और तृतीय खण्ड में स्वच्छन्द छन्द का साम्राज्य है। कवि ने पुस्तक की भूमिका में स्वच्छन्द छन्द की विवेचना की है। उन दिनों इस छन्द को लेकर अधिक वादविवाद चला था; कोई इसे 'केचुवा छन्द' कहता था तो कोई 'रबड़ छन्द' की संज्ञा से विभूषित करता था। यहाँ सभी भ्रमों का निराकरण किया गया है। मुक्त छन्द, छन्द भूमि में रह कर भी मुक्त हैं। उनमें नियम कोई नहीं। केवल कवित्त छन्द का प्रवाह जान पड़ता है।

इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड में अनेक सरस प्रार्थनात्मक गीत हैं।

यहाँ कवि ने सीधी-सादी अभिव्यंजना पद्धति को अपनाया है; अतएव अधिकांश कवितायें प्रसाद गुण से पूर्ण हैं—

डोलती नाव प्रखर है धार,
सँभालो जीवन खेवन हार!
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है
टूट गई पतवार,
जीवन खेवन हार!

कवि ने जगजीवन के कष्ट को छोड़कर अनेक स्थानों पर 'उस पार' जाने की इच्छा प्रकट की है।

'परिमल' के अनेक गीतों में प्रकृति का उत्कृष्ट स्वरूप लक्षित होता है। यहाँ पावस और ऋतुराज दोनों का हृदयग्राही वर्णन है। संगीत की मधुरता, भावों की स्पष्टता तथा उपयुक्त शब्द योजना के कारण ये गीत अद्वितीय हैं—

'अलि घिर आये घन पावस के।
द्रुम समीर-कम्पित थर थर थर
झरती धारायें झर झर झर
जगती के प्राणों में स्मर-शर
बेध गये-कसके।
अलि घिर आये घन पावस के।'

बसंतागम में प्रकृति का चित्र देखिये—

'दूत अलि ऋतु पति के आये
फूट हरित पत्रों के उर में स्वरसप्तक छाये।
देख लोल लहरों की छल छल
सखियाँ मिल कहतीं कुछ कल कल
बही साँस में शीतल परिमल
तन मन लहराये।
दूत अलि ऋतुपति के आये॥'

इसी भाँति 'प्रभाती' में प्रातः काल का भव्य चित्र अंकित है।

प्रेम के सुखद पक्ष का चित्र बनाते हुये निराला जी ने स्पष्टता के साथ मनोभावों का चित्र अंकित किया है—

'खड़ी सोचती नमित नयन मुख
रखती पग उर काँप पुलक सुख
हँस अपने ही आप सकुच धनि
गति मृदु मंद चली
निशा के उर की खुली कली।'

'प्रिया के प्रति' कवि की एक करुण रचना है, जिसमें प्रेम के सात्विक स्वरूप का दर्शन होता है। 'तुम और मैं' सदैव साहित्यिकों को प्रिय रही है।

विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास रचनाओं में 'बादल राग' अपने संगीत और शब्द-योजना के लिये अधिक प्रसिद्ध है। नाद सौन्दर्य की यह झाँकी अन्यत्र दुर्लभ है। 'संध्या-सुन्दरी' एक उत्कृष्ट रचना है, जहाँ लय और प्राकृतिक सौन्दर्य दोनों ही प्रचुर मात्रा में उपस्थित हैं।

तृतीय खण्ड की कविताओं में 'जूही की कली' 'जागो फिर एक बार' आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

'गीतिका' में गीतों का प्राधान्य है। इसका रचना काल सन् १९३६ ई० के लगभग है। 'निराला' जी इस कृति का प्रणयन करके ही अपनी गीति-रचना-शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन कर सके हैं।

पुस्तक के प्रारंभिक गीत में 'वीणा वादिनी' की वंदना की गई है। अनेक गीत 'जीव और ब्रह्म' के संबंध को लेकर लिखे गये हैं।

'कैसी बजी बीन
सजी मैं दिन दीन,

किसी-किसी गीत में ऐसा संकेत मिलता है कि सृष्टि भर में एक ही ब्रह्म व्याप्त है—

'जग का एक देखा तार'

इन गीतों में देश प्रेम का भी समावेश है; और एक गीत में मातृ-भूमि का अत्यन्त मनोज्ञ चित्र खींचा गया है। दूसरे गीत में 'क्रांति' की कामना करता हुआ कवि बोल उठा है—

'जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूँगा तन जीवन हीन'

कुछ गीत भौतिक प्रेम से भी संबंधित हैं। कवि ने संयोग की अनुपम छटा अंकित की है।

यहाँ कवि ने प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण को अपनाया है और उससे उसे नवीन प्रेरणा भी प्राप्त होती है—

'पत्रों के झुरमुट में सुखकर
तुम्हीं सुनाती हो नूतन स्वर
भर देती हो प्राण'

'गीतिका' के गीत भारतीय ढंग के हैं। इन में से कुछ दार्शनिक भावों से पूर्ण हैं, कुछ भौतिक प्रेम से, कुछ देश प्रेम की भावना से भरे हैं और कुछ प्राकृतिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत हैं। अनेक गीत अलंकारमय हैं। इनकी भाषा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली है और इनमें अनेक प्रकार का संगीत मिलता है। इनकी सृष्टि में कवि ने संगीत, कल्पना और अपने व्यक्तित्व का प्रचुर प्रयोग किया है।

इन गीतों में मानव जीवन का संयम है और कहीं भी शृंगारिक भावनाओं का अतिरेक नहीं लक्षित होता। गीतों की धारा में अवरोध उपस्थित करने वाली भावनाओं का अभाव है; अतः ये सर्वत्र एक रस रह जाते हैं। इनमें शाब्दिक सौन्दर्य और संक्षेप में विस्तृत आशय की अभिव्यक्ति स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ कला की भंगिमायें हैं और बुद्धि की ज्योति, मनोहर गति है और बौद्धिक आनंद।

गीतिका में परोक्ष की रहस्यानुभूति भी पाई जाती है; और इसी सत्ता से संबंधित जीवन के अनेक व्यापार यहाँ उपस्थित हैं। यह साहित्यगत रहस्य-साधना मार्मिक है और कहीं-कहीं तो विशुद्ध परोक्ष की भावना वर्तमान है:—

"तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान"

गीतिका तक आते-आते कवि ने गीतों को पूर्णतया अपना लिया है और मनोहर शब्दयोजना तथा उत्कृष्ट संगीत का उत्तम योग उपस्थित किया है।

सन् १९३८ में 'तुलसीदास' की रचना हुई, जिसमें मुसलमान शासकों की प्रगति का उत्तम रूप अंकित किया गया। पं० शांतिप्रिय

द्विवेदी ने 'निराला' जी के काव्य के प्रति कहा है, 'निराला जी का काव्य गहन गिरिकानन है।' यह उक्ति 'तुलसीदास' के लिये सर्वथा सत्य है। अनामिका के नवीन संग्रह में अनेक क्लिष्ट कवितायें रख दी गई हैं। यह समय प्रगतिवाद के विकास का था; अतः कवि ने भी कुछ प्रगतिशील ढंग अपनाया। 'तोड़ती पत्थर' कवि की ऐसी ही रचना है। 'कुकुरमुत्ता' 'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' ये सब प्रगति काल की ही रचनायें हैं, जिनमें शोषितों के प्रति दया और शोषकों के प्रति उपेक्षा का भाव भरा है। ये कवितायें भी कवि की उत्तम कल्पना से हीन नहीं हैं। 'कुकुरमुत्ते' में जहाँ 'पारसी गुलाब' और 'कुकुरमुत्ते' की बातें हैं वहीं उच्चकोटि की कल्पनायें भी, जहाँ वह राम का बाण और कृष्ण की मथानी बन जाता है।

आज भी कवि की भावधारा से अनेक गीत मुखरित होकर निकल पड़ते हैं। शरद के प्रति एक गीत है—

सखी री खंजन बन आये।
सरसीरूह छाये
हरसिंगार के हार पड़े हैं
शशि के मुख असि नयन गड़े हैं
पहरे शाल रसाल खड़े हैं
तारक मुसकाये
सखी री खंजन बन आये।
धान पके सोने की बाली
पानी भरी अगहनी आली
छई बाजरे की नभ लाली
कास कुसुम भाये
सखी री खंजन बन आये।

यहाँ सुन्दर सरल शब्द योजना, उत्तम संगीत, मनोरम प्राकृतिक चित्र और शरद की सी मनोज्ञता है।

'निराला' जी बौद्धिक उत्कर्ष के कवि हैं; अतः इनके गीत पांडित्य-पूर्ण हैं और इसी से कहीं-कहीं शुष्कता भी आ गई है। ये किसी विशेष वाद के चक्कर में नहीं पड़े हैं; अतः इनकी कविता का प्रसार असीम है। आज 'निराला' जैसे गुरु कलाकार अधिक नहीं है। भारतीय संगीत के महान् बोध के फल स्वरूप ही कवि ऐसे गीतों की रचना कर सका है जो पाश्चात्य गीति-शैली से दूर होते हुये भी, पाठक को तन्मय कर देते हैं। इनकी भाषा खड़ी बोली है, जिसमें आवश्यकतानुसार संस्कृत उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया गया है और कहीं-कहीं अंग्रेजी का भी।

—महादेवी—

गीतों की जिस परम्परा का अनुसरण 'प्रसाद', 'पंत' 'निराला' आदि ने किया है, उसकी पूर्णता महादेवी के काव्य में लक्षित होती है। उपरिलिखित तीनों कवि अध्यात्मवादी होते हुए भी शृङ्गार से मोह करते हैं, पर महादेवी जी इससे पूर्णतः बची हैं। इनके गीत मीरा के पदों के समान हैं। सम्बन्ध सूत्र की दृष्टि से भी महादेवी के गीतों की अपनी ही विशेषता है। इन मुक्तकों में कथा का भी अंश पाया जाता है।

"महादेवी का प्रत्येक गीत वैसे अपने में पूर्ण है, पर वह एक विस्तृत भाव-माला का पुष्प है; अतः उसे सापेक्ष दृष्टि से देखना ही अधिक संगत होगा।"

"ये गीत एक दूसरे से सम्बंधित हैं। 'नीहार' में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति, 'रश्मि' में दार्शनिक सिद्धान्त, 'नीरजा' में विरहव्यथा,

'सांध्य-गीत' में आत्म-तोष और 'दीपशिखा' में साधना की गति का प्रतिपादन है।"

महादेवी की रहस्य साधना।

कवयित्री ने मानव-जीवन पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। उन्होंने उसे साहित्य का उत्तम विषय माना है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका लिखते हुए एक स्थान पर वे कहती हैं—

"साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती हैं जैसे धूप-छाहीं वस्त्र में दो रंगों के तार जो अपनी अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामन्जस्य पूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अंतर्जगत त्याज्य है न वाह्य, क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है आंशिक नहीं।"

'महादेवी' जी में मानव-जीवन के प्रति प्राचीन विश्वास वर्तमान है। वे पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानती हैं।

"गये तब से कितने युग बीत,
हुए कितने दीपक निर्वाण।
नहीं पर मैंने पाया सीख,
तुम्हारा सा मन मोहन गान॥"

उनका विश्वास है कि अन्त में जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है, अतएव वे अपनी अस्फुट झंकार को विश्व-वीणा में सर्वदा के लिए मिला देना चाहती हैं। उन्हें यह भी पूर्णतः ज्ञात है कि एक दिन इस लघु-सीमा (जीव) का असीम (ब्रह्म) से मेल हो जायगा।

अनेक छायावादी कवियों की भाँति महादेवी जी ने भी उस पार की

कल्पना की है। यह 'उसपार' प्राचीन काल के स्वर्ग सा है जैसा वर्णन से स्पष्ट हो जाता है :—

"सुना है मैंने इसके पार,
बसा है सोने का संसार।
जहाँ के हँसते विहग ललाम,
मृत्यु छाया का सुनकर नाम,
धरा का यह अनन्त शृंगार,
कौन पहुँचा देगा उस पार॥"

इन्होंने भव सागर की भी कल्पना की है; अतएव कहीं कहीं विशाल समुद्र, छोटी नौका, भयंकर तूफान और कर्णधार की पुकार सुनाई पड़ जाती है।

इन्हें जीवन की क्षण भंगुरता का भी पूर्ण बोध है। सच पूछिए तो यहाँ सबका जीवन क्षुद्र है—

"विकसते मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चंद,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मंद
यहाँ किसका अनन्त यौवन,
अरे अस्थिर छोटे जीवन॥"

फिर भी प्राणी को अपने ऊपर गर्व होना चाहिए, वह क्षुद्र है तो इससे क्या, उसकी अपनी विशेषताएँ जो हैं—

"मेरी लघुता पर आती,
जिस दिव्य लोक की व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो,
वे पाल सकेंगे पीड़ा?"

मानव-जीवन में सुख दुख आते ही रहते हैं। साधारण व्यक्ति सुख की आकांक्षा करता है और दुःख से घबड़ा उठता है, पर कवयित्री दुःख में ही अधिक कल्याण देखती हैं—सुख से प्राणी गर्वित हो उठता है और दुख से उसे संसार के प्रति ममत्व की प्राप्ति होती है। उसका जीवन मृदु और उर्वर हो जाता है।

महादेवी जी को प्रारंभ से ही इस व्यक्त जगत में परोक्ष की अनुभूति होती रही है और उसका आभास मिलता रहा है। इन्होंने प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में चेतना तथा परोक्ष सत्ता का दर्शन किया है। अतएव इनकी रचनाएँ रहस्यवाद के अन्तर्गत आती हैं। इनको रहस्यवाद की भारतीय परम्परा का पूर्ण बोध है, साथ ही पाश्चात्य काव्य धारा में प्रवाहित रहस्यवाद का भी उन्होंने उचित अवगाहन किया है। इनका रहस्यवाद साधना और दार्शनिक सिद्धान्तों से दूर है। ज्ञान के क्षेत्र की रहस्यानुभूति हृदय की कोमल भावनाओं के योग से बड़ी ही आकर्षक बन गई है और विश्व के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण होने से वे सौन्दर्य दर्शन में समर्थ हो सकी हैं।

इन्होंने परमशक्ति और प्राणी के बीच में प्रेम का सम्बन्ध माना है। प्राचीन रहस्यवादियों ने भी इस सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए बहुधा दाम्पत्य प्रेम का चित्र ही समक्ष रक्खा है। वह प्रिय रहस्यमय है। कभी तड़ित की मुसकान में चमककर लोचनों को मूँदता है और कभी स्वप्न शाला में यवनिका डालकर दृगों को खोलता है। सम्पूर्ण विश्व उसकी कृपा पर आश्रित है, उसी की छाया में प्रसन्न है—

तेरी छाया में दिन को हँसता है गर्वीला जग
तू एक अतिथि जिसका पथ हैं देख रहे अगणित दृग
साँसों में घड़ियाँ गिन गिन।

उसके आगमन का ज्ञान होते ही सृष्टि प्रसन्न हो जाती है—

'मुसकाता संकेत भरा नभ,
अलि! क्या प्रिय आने वाले हैं ?"

ऐसे समर्थ प्रिय का प्रेमी होना कितने सौभाग्य की बात है। मनुष्य में तो इतनी भी शक्ति नहीं कि उस महामहिम की पूजा तक कर सके या उसके साथ प्रेमी-प्रेमिका जैसा आचरण ही कर सके। महादेवी जी इसकी आवश्यकता भी नहीं समझतीं—

"उस असीम का सुन्दर मंदिर,
मेरा लघुतम जीवन रे,
क्या पूजा क्या अर्चन रे ।।"

और—

"काया छाया में रहस्यमय,
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या ।"

कबीर ने भी ऐसा ही समझा था।

लौकिक प्रेम के समान इस प्रेम के साम्राज्य में भी मिलन और विरह दोनों का अस्तित्व है। कवयित्री केवल मिलन की ही नहीं, विरह की भी आकांक्षा रखती है।

उस परम पुरुष को प्रसन्न करने के लिए वह नैसर्गिक शृङ्गार करती है जहाँ दर्पण के लिए शशि और केश के स्थान पर तिमिर का आयोजन होता है। वह रजनी से अंजन माँगकर अपनी आँखों की सौन्दर्य-वृद्धि करती हैं। फिर भी यह अभिनव शृङ्गार उसे रिझा नहीं पाता। इनके गीतों में विरह का ही प्राधान्य है; यद्यपि वहाँ मिलन के भी अनेक सुन्दर चित्र उपस्थित हैं। जीवन विरह का जलजात है। विरह काम्य है, क्योंकि इससे प्रिय का सामीप्य प्राप्त होता है, वह अधिकाधिक समीप आजाता है, अतएव महादेवी जी चिर-वियोगिनी बन गई हैं और प्राणों

का दीप जलाकर अपने सूनेपन को आलोकित करती रहती हैं। उनको पीड़ा से प्रेम हो गया है और उनमें वह शक्ति आ गई है, जिससे विश्व के महान् दुख को भी वे अपनी आँखों में रख लेती हैं। वे इस दुखमय नश्वर जीवन के बदले में अमरों के लोक को भी नहीं लेना चाहतीं। वे अपनी स्थिति से पूर्ण सन्तुष्ट हैं। वे इसी वेदना के माध्यम से विश्व के कण कण से परिचय प्राप्त कर लेती हैं।

इन गीतों में करुणा तथा माधुर्य का प्राधान्य लक्षित होता है। यहाँ रात की सी करुणा है और प्रातः जैसा माधुर्य। मानव-जीवन के लिए ऐसे प्रतीक रखे गए हैं जो करुणतम हों जैसे जलता हुआ दीपक। यह करुणा उस विशाल हृदय का अंग है जिसमें ऐसी प्रखर सहानुभूति लहरें लेती हैं जो एक साथ ही सृष्टि की सम्पूर्ण पीड़ा को धो डालें। अपनी दशा का वे प्रदर्शन नही करना चाहतीं, केवल इतना चाहती हैं कि उनकी करुणा प्रिय को अवगत हो जाय—

"घुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला,
झूमता है विश्व पी पी, घूमती नक्षत्र-माला।"

"साध है तुम
बन सघन तम
सुरंग अवगुण्ठन उठा, गिन आँसुओं की रेख लेते।"

महादेवी जी ने प्रकृति का अत्यन्त निकट से अध्ययन किया है। प्रकृति मानव सापेक्ष है, अतएव उनके दुख, सुख उसमें स्पष्ट लक्षित होते हैं।

"फैलते हैं सांध्य-नभ में भाव ही मेरे रँगीले।
तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले॥"

कभी मानव जीवन और प्रकृति में वैषम्य भी उपस्थित हो जाता है। वे देखती हैं एक में आँसू है दूसरे में हास्य, एक में क्रन्दन है और

दूसरे में वैभव। जीवन कितना करुण है! कहीं कहीं तो एक ही प्राकृतिक वस्तु में दोहरे भावों का प्रतिफलन होता है।

"भरे हुए अब तक फूलों में,
मेरे आँसू उनके हास।"

प्रकृति के विशाल और मनोहर रंगमंच पर ही प्रिय का पदचार लक्षित होता है; अतः उसके प्रति इतना अनुराग उचित ही है।

महादेवी जी की भाषा उच्चकोटि की खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत के शब्द उचित मात्रा में पाए जाते हैं। इनकी शब्दावली से मधुर करुण व्यक्तित्व का बोध होता है। अनेक स्थानों पर तुक-पूर्ति और मात्राओं के आग्रह से शब्दों को विरूप भी कर दिया गया है—जैसे बतास, अधार आदि, फिर भी माधुर्य में बाधा नहीं पड़ती। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मनोदशा के अनुकूल शब्द स्वयं ही उपस्थित हो रहे हैं, उनको लाने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। कुछ गीतों में उर्दू के कई प्रचलित शब्द भी आ गए हैं जैसे फीका, दाग, बेहोशी, लबालब, और कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग हुआ है—जैसे लीप, गगरी आदि।

इनके छन्द मात्रिक हैं। कुछ तो लोक-गीतों के ढङ्ग के भी लिखे गए हैं। इनकी विविधता पाठक को बड़ी ही प्रिय प्रतीत होती है। नाद-सौन्दर्य तथा मधुर प्रवाह महादेवी जी की विशेषता है। इनका संगीत क्रमशः सुन्दर होता गया है। 'नीरजा' से 'सांध्यगीत' मधुर है और 'सांध्यगीत' से 'दीपशिखा।' इन गीतों में शब्दालंकारों की कमी है, लेकिन अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। इनमें उपमा, समासोक्ति और रूपक के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। अनेक स्थलों पर विरोधाभास का उत्तम प्रयोग किया गया है—

"धूलि के कण में नभ-सी चाह।
विन्दु में दुख का जलधि अथाह॥"

इनको मूर्त्तिकरण की कला भी प्रिय है—

"वेदना की वीणा पर देव,
शून्य गाता हो नीरव राग।"

इसकी पुष्टि करते हुए महादेवी जी ने यह स्वयं बताया है कि वैदिक ॠचाओं में भी उषा, मरुत को चेतन व्यक्तित्व दिया गया है। इन पर वाह्य प्रभाव भी पड़ा है जैसे—

"फूल को उर में छिपाए विकल-बुलबुल हूँ"

बीसवीं सदी के गीतिकारों में महादेवी जी का प्रमुख स्थान है। इनके भाव उच्चकोटि के हैं और उनमें सांकेतिकता भरी पड़ी है। आध्यात्मिक भाव साधारण बुद्धि से ऊपर होते ही हैं और जहाँ उनमें कठिन प्रतीकों का प्रयोग हो गया है, वहाँ उनका दुरूह हो जाना स्वाभाविक ही है। इनके गीत-भाव, भाषा, कला सर्वगुण सम्पन्न हैं।

—रामकुमार वर्मा—

रामकुमार वर्मा छायावाद युग के श्रेष्ठ गीत-लेखक हैं। इनकी कला जीवन के लिए है। उसमें जीवन की विवेचना है। इन्होंने जीवन से अलग हटी हुई कविता को साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता माना है।

मानव-जीवन क्षणभंगुर है, फिर भी इसमें अतृप्ति का प्राधान्य है। शरीर एक छोटे से घट के समान है और अतृप्ति सागर की लहरों के सदृश विशाल।

केवल दो चार साँसे लेकर प्राणी संसार के पीछे मारा भटकता है, यह दृश्य रामकुमार जी को उदासीन बना देता है! वे दुख से नहीं घबराते, फिर भी क्षण भंगुरता उन्हें सर्वदा खटकती रहती है। सुख और दुःख दोनों समान हैं। प्राणी दोनों में मन उलझा देता है। पर जीवन में दुःख का प्राधान्य है।—

"मेरी जीवन-तंत्रीं में कितनी आहों के तार लगे।
मेरे रोम रोम में कितने ही दुख के संसार लगे।

और वे सुख की कामना भी नहीं करते—

"सुख की नहीं किन्तु दुख ही की बनी रहूँगी रानी।
मेरे मन ही में रहने दो मेरी करुण कहानी।"

कवि के प्राणों पर वेदना का अधिकार है, यद्यपि उसमें ज्ञान-ज्योति है, साथ ही साथ जलन भी है—ज्योति और जलन का एक साथ रहना उचित भी है। उसके छोटे से हृदय में अपार वेदना भरी पड़ी है।

मानव जीवन में यदि दुःख है, पीड़ा, है तो करुणा का आजाना स्वाभाविक ही है। इसके सहयोग से मनुष्य नम्र हो जाता है, उसकी सबके साथ सहानुभूति हो जाती है और उसका 'अहं' भाग जाता है। कवि ने थोड़े से शब्दों में जीवन का एक कितना मार्मिक चित्र उपस्थित किया है।

"यह जीवन तो छाया है,
केवल सुख दुख की छाया।
मुझको निर्मित कर तुमने,
आँसू का रूप बनाया।"

अतएव वह प्रार्थना करता है—

"दो मुझे वह सत्य जो,
संसार का शासन करे,
चिर दुखों की रात्रि भी,
मुझको बने मधुयामिनी।"

रामकुमार जी की कविताओं में रहस्यवाद का अंश प्रधान है। वे प्रेम के आधार पर आत्मा और विश्वात्मा में ऐक्य स्थापित करते हैं। अद्वैतवादी अपनी आत्मा को, अपने को, परमात्मा में खो देते हैं;

पर रहस्यवादी दोनों की एकता को मानता है, ऐक्य को नहीं मानता। वहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलने पर विकास होता है, विनाश नहीं।

रहस्यवाद में अनुभूति की प्रधानता है; अतएव यहाँ ज्ञान और विवेक के लिए कोई स्थान नहीं है। स्नेह के फूल को बुद्धिवाद की कसौटी पर कसना अनुचित है।

जीव ब्रह्म से सम्बंधित है या ब्रह्म का एक लघु रूप है—

"सागर बनकर ओस बिन्दु में आया यहाँ समाने।
उड़ जाऊँगा दो क्षण ही में जाने या अनजाने॥"

जीव ब्रह्म के नूपुरों का हास है और अपनी श्वासों से उसका यशगान कर रहा है, फिर भी उसे मिलन-सुख नहीं मिल पाता—

"मैं ससीम असीम सुख से,
सींचकर संसार सारा।
साँस की विरुदावली से,
गा रहा हूँ यश तुम्हारा।"
पर तुम्हें अब कौन स्वर
"स्वरकार! मेरे पास लाए,
भूल कर भी तुम न आए।"

कभी-कभी आराधक को आराध्य का संकेत मिलता है, पर वह उसे नहीं समझ पाता। रहस्यवाद की प्रणाली के अनुकूल ही यहाँ भी प्रकृति में प्रिय का सौन्दर्य बिखरा पड़ा है; वही सर्वत्र वर्तमान है, यह देखकर कवि को कौतूहल होता है। ओसों की हँसी में, विहंगों के कल कंठों में, संध्या के मलीन और उदास वातावरण में, सर्वत्र प्रिय की विभूति उपस्थित है। वह तो प्रेमी के उच्छ्वासों के समीप भी छिपकर बैठा है। यही अनुभूति रहस्य बोध है।

रामकुमार जी के गीतों में प्रकृति का मनोज्ञ चित्रण उपस्थित है।

इन्होंने प्रकृति के अनेक रहस्यों को समीप से देखा है और अपनी भावना के केन्द्र बिन्दु को अत्यन्त सूक्ष्म बनाकर सरलता से प्रकृति के सौन्दर्य-लोक में प्रवेश किया है।

प्रकृति में भी प्रणय-व्यापार चल रहा है। निर्झर किसी को बन-बन खोजता फिरता है और वियोग में रो-रोकर जलमय हो गया है। प्रकृति में दुःख और पीड़ा का साम्राज्य फैला हुआ है:—

यह नव बसंत है? नहीं यहाँ,
रंगों में छिपकर लगी आग,
यह निर्झर मेरे ही समान,
किस व्याकुल की है अश्रुधार।
देखो यह मुरझा गया फूल,
जिसको कल मैंने किया प्यार।

प्राकृतिक-सौन्दर्य भी वैसा ही नश्वर है जैसे मानव-जीवन। स्थिरता कहीं लक्षित होती ही नहीं। कवि कुछ समझ नहीं पाता—

कैसा वह प्रदेश है जिसमें,
एक उषा वह भी नश्वर है,
उज्ज्वल एक तड़ित है जिसका,
जीवन भी केवल क्षणभर है।

सृष्टि में सर्वत्र नश्वरता विराज रही है; अतएव विद्वान् का उसकी ओर से उदासीन हो जाना ही स्वाभाविक है। यहाँ बड़ी विचित्र घटनाएँ घट रही हैं। नित्य प्रति भास्कर दिन को रात्रि श्याम वस्त्र में लपेट देती है, नीच नभ भूले हुए शशि के पथ में काँच के टुकड़े फैलाकर उसे दुख देता रहता है, सुन्दर लताओं में विषैले सर्प लिपटे रहते हैं, यह रहस्य बुद्धि से परे हैं, यही तो माया जाल है जिसमें प्राणी खोया रहता है।

इस सृष्टि में छोटी सी पृथ्वी का ही कौन सा अस्तित्व है? यह बारिधि के मुख में पड़े हुए एक ग्रास के समान है और इस छोटी सी पृथ्वी में सुख कहीं दिखाई ही नहीं देता, सर्वत्र रुदन फैला है। यदि कहीं हँसी भी है तो वह रुदनपूर्ण।

जैसे दो दिन के लिए फूल खिल जाते हैं और भ्रमर उन पर मुग्ध होकर चक्कर लगाने लगते हैं वैसे ही दो दिन के सुख में प्राणी व्यर्थ भूल जाता है, वह अपनी मूर्खता से सुख की कल्पना कर लेता है, यह उसकी बड़ी भूल है—

समय हँसा सुख उसको जाना,
यह जग तो था एक बहाना,
ये गृह, ये नक्षत्र कुछ नहीं,
नभ में हँसती है कुछ धूल,
आज देख ली अपनी भूल।

जीवन और प्रकृति का समीप से अध्ययन करने के उपरांत कवि उदासीन हो जाता है, उसे घोर निराशा हो जाती है, निराशावाद की यह झलक अनेक गीतों में मिलती है—

"मुझे न छूना जतलाओ मत अपना झूठा प्यार।
धूल समझकर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार!"

इस भाँति रामकुमार जी ने भी प्राचीन काल के आचार्यों की भाँति विश्व को मिथ्या मान लिया है। कवि की निराशा आध्यात्मिक है, भौतिकवादी नहीं। कवि का सौन्दर्य-प्रेम नश्वरता और जीवन की विवशताओं के बोध से विषादमय हो जाता है।

इनके गीतों में विश्वभावना का भी सम्यक समावेश हुआ है, संसार के दुखों को शांत करने की और विश्व की ज्वाला बुझा देने की कामना बलवती हो उठती है। कवि गा उठता है—

"मैं आज बनूँगा जलद जाल।
मेरी करुणा का वारि सींचता रहे अवनि का अंतराल।"

रामकुमार जी के गीत खड़ी बोली में लिखे गए हैं, जिसमें संस्कृत के शब्द भी हैं और कुछ उर्दू के भी। कुछ ऐसे शब्द भी आगए हैं जिनका प्रयोग केवल पद्य ही में होता है जैसे 'जतलाओ'।

मुक्त छंद की अपेक्षा तुकांत छन्द गीत के लिए अच्छे होते हैं, ऐसा कवि का विश्वास है। इनके गीतों में छन्दों की विविधता के साथ ही उच्चकोटि का संगीत वर्तमान है। शब्दों का चयन सुरुचिपूर्ण है और भाषा शृंगार के साथ आई है। रामकुमार जी की कई उपमाएँ सर्वथा नवीन हैं। देखिए—

'आओ चुम्बन सी छोटी है यह जीवन की रात।'

प्राकृतिक पदार्थों को कवि ने कई स्थानों पर मानव-रूप दिया है; रात्रि को बाला के रूप में देखा है और फूलों की अधखुली आँखों से प्रियतम का मार्ग देखने की प्रार्थना की है।

—हरवंशराय 'बच्चन'—

छायावाद तथा रहस्यवाद के शैशवकाल में कुछ कवि समाज के प्रतिकूल भावना लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए जिनमें 'बच्चन' 'नवीन' आदि प्रमुख हैं। सन् १९३५ ई० में 'हालावाद' का साहित्य-प्रेमियों ने आस्वादन किया। यद्यपि पहले पहल पं० पद्मकान्त जी मालवीय ने इसका प्रयोग किया था फिर भी 'हाला', 'प्याला' के सम्यक प्रचार का श्रेय श्री 'बच्चन' जी को ही है। इन कवियों पर उमर खय्याम का अत्यधिक प्रभाव था। किसी किसी ने हालावाद में प्रतीकवाद की भी प्रतिष्ठा की है और अपने ढंग से इसे समझने समझाने का प्रयत्न किया है। इन्हीं दिनों 'बच्चन' की 'मधुशाला' आई जो युवकों को अत्यन्त प्रिय

थी। साकी-गुल-बुलबुल को हिन्दी में स्थान मिला; यद्यपि यह सब अपनी काव्य-परंपरा के प्रतिकूल था।

यों तो सर्वप्रथम 'बच्चन' जी 'मधुशाला' लेकर ही हमारे सामने आए, फिर भी उनकी प्रारंभिक रचनाएँ महत्वपूर्ण थीं। इनका निर्माण-काल 'मधुशाला' से पहले है और इन्हें दो भागों में प्रकाशित किया गया है।

सन् १९३० ई० के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से कवि ने यूनिवर्सिटी छोड़ दी थी। अतः इस काल की रचनाओं में स्वातन्त्र्य-प्रेम और देश भक्ति प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत है। वह फहरते हुए झंडे में भारत माँ का निमंत्रण पाता है और कभी स्वतंत्रता अपहरण पर खीझ प्रकट करता है। देशभक्ति बड़े भाग्य की बात है—

कैसे आता तेरे साथ,
देशभक्ति करने का अवसर बड़े भाग्य से मिले मित्रवर।
मेरी किस्मत में वह लिखते कैसे विधि के हाथ?

कवि के जीवन में देश-प्रेम के साथ ही प्रणय भी पनपता है। यह आदर्श प्रणय है जिसमें त्याग अनिवार्य है और विज्ञापन वर्जित। वह प्रेम में आदान-प्रदान का सिद्धान्त नहीं मानता। अपने हृदय को देकर दूसरे के हृदय के पाने की आशा उसे व्यर्थ प्रतीत होती है। विरह में उसे सर्वत्र वेदना की प्रबलता लक्षित होती है। वह चन्द्रदेव को सम्बोधित करके कहता है—

"नहीं कुछ सुनते मेरी बात।
देव, विरह दुख क्षणिक तुम्हें जब
इतना होता बतलाओ अब
धरें धैर्य मानव हम क्यों तब।
हो वियोग, जिनका मिलना फिर दूर, निकट अज्ञात।"

दुःख उसे प्रिय है, वह उसकी कामना भी करता है—

"प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख सुखियों पर छाए,
आशिष आशिष वानों पर,
मुझ दुखिया पर दुख आए।"

कवि का प्रेम पूर्णभौतिक है। वह किसी के नए मक्खन से कोमल तन को भुजपाशों में बाँधना चाहता है। उसके प्रेम में सांसारिक प्रेम-की आतुरता पूर्णतः वर्तमान है। वह प्रेम को स्वर्ग से बढ़ कर मानता है।

प्राकृतिक सुख भी क्षण भंगुर है, यह कितने दुःख की बात है। कवि को यह देखकर घोर निराशा होती है। वह सम्पूर्ण विश्व के प्रति सहानुभूति रखता है—

"जगती तल का क्रन्दन त्रास,
मैं हूँ प्रतिक्षण सुनता रहता,
लगता सबके दुःख में सहता,
भारी रहता हृदय इसी से रहता सदा उदास!"

इन दिनों बच्चन जी की भावधारा में एक विचित्र बात लक्षित होती है। कभी तो वे परम आस्तिक बन जाते हैं और कृष्ण की मुरली भी उनके काव्य का विषय बन जाती है। वे सुदामा कृष्ण के प्रेम तक को याद कर लेते हैं।

"मैले कपड़ों के भीतर जिसने तंदुल पहचाने,
वह हार छिपाये मेरा रहता कब तक अनजाने"

और कभी इस प्रकार की घोषणा करते हैं—

"धर्म हमारा पूछो प्राण ?
ईश्वर को मैं नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता,
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान ।"

धारणाओं के इन परिवर्तनों का कारण विचारों की प्रौढ़ता का अभाव है।

'प्रारंभिक रचनायें' भाग २ में गांधी जी से सम्बन्धित अनेक कविताएँ हैं और देश-प्रेम की सशक्त व्यंजना है—

"काव्य-कल्पना के डैनों पर,
चढ़ मैं उड़ता जाऊँ,
बहुत दूर जाकर भी अपने
भारत को न भुलाऊँ।"

"पांचजन्य" में देश हित और स्वातन्त्र्य रक्षा के निमित्त क्रान्ति का आह्वान किया गया है।

कवि जीवन में पीड़ा को महत्वपूर्ण मानता है। "कवि के आँसू" इसी भावना से ओत-प्रोत हैं। बिना पीड़ा-बोध के कविता हो ही नहीं सकती—

"हँसी रेणु सी बिखरी आँसू से न अगर सानी जाती,
कविता की सुन्दर सी प्रतिमा भला कभी क्या बन पाती ?"

इतना ही नहीं, पीड़ा-विहीन जीवन सर्वथा निरर्थक है—

"वह क्या जीवन जिस पर बहता,
आहों का बातास न हो ?
वह क्या जीवन जिस पर होती,
आँसू की बरसात न हो ?"

उसे सौन्दर्य में सुख का अनुभव होता है, पर विश्व-सौन्दर्य त्रुटिपूर्ण है; अतः कवि ने अपने ही सौन्दर्य-लोक का निर्माण कर लिया है। कल्पना और प्राकृतिक सौन्दर्य में कवि की प्रवृत्ति पूर्णतः रमती है।

इस पुस्तक में भी कई ऐसी कविताएँ हैं जहाँ कवि ने स्पष्ट शब्दों में ईश्वर विरोध किया है। वह उसकी सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास नहीं रखता—

"विश्व का हो भी यदि कर्तार
किसी बन्धन का वह भी दास,
फँस गया वह भी तुझको फाँस,
उसके आगे झुकना कैसा जो तुझ-सा लाचार।"

वह जीवन का आदर्श मुक्ति नहीं मानता, यद्यपि उसके भौतिक रूप पर भी उसे विशेष आस्था नहीं है—

"जग उज्ज्वल जीवन क्षणभर,
फिर चारों ओर अँधेरा।
इस क्षण भंगुर आभा पर,
क्यों मोहित हो मन मेरा॥"

'बच्चन' जी ने इन कविताओं की रचना में भिन्न भिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है; अतएव इनमें संगीत का वैचित्र्य भी अपने आप उपस्थित हो गया है—'बसंत', 'निरर्थक-अश्रु', 'विडंबना' 'कल्पना विश्व' आदि नवीन प्रकार के प्रयोग हैं।

इन कविताओं में उर्दू के शब्द प्रचुर मात्रा में वर्तमान हैं। 'मलाल', 'नाज', 'सिफारिश', 'बर्बाद', ये सब वहाँ प्रस्तुत हैं। अनेक स्थानों पर 'अनेकों' का प्रयोग किया गया है और अँग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे—'लंप' 'अपील' आदि। ग्रामीण शब्दों की भी

कमी नहीं है। 'लीप' 'तंग करना' 'खटका', इनका व्यवहार किया गया है। प्रारंभिक रचनाएँ भाग १ से कहीं अधिक भाषा का प्रांजल रूप भाग २ में मिलता है। 'बच्चन' जी की भाषा क्रमशः शुद्ध होती गई है और भाषा की दृष्टि से भाग २ में 'गीत-विहंग', 'ग्रीष्म-बयार' आदि उत्तम गीत बन पड़े हैं।

इन रचनाओं के अनन्तर ही बच्चन जी ने 'मधुशाला' का सृजन किया, जिसने उन्हें प्रिय-कवि बना दिया। इसमें सवा सौ रुबाइयाँ हैं और स्थान स्थान पर आध्यात्मिक अर्थ भी झलक जाता है।

'मधुबाला' में अनेक गीत रखे गए हैं जिनमें कवि ने अपने ऊपर लगाए गए भ्रामक आक्षेपों के उत्तर देने की चेष्टा की है। यहीं से कवि का गीतों पर अधिकार प्रकट होने लगता है। अपने गीतों के विषय में वह स्वयं कहता है—

"गीत कह इसको न दुनियाँ,
यह दुखों की माप मेरे।"

कभी वह संसार की बुद्धि पर तरस खाते हुए बोल उठता है—

"कह रहा जग, बासनामय हो रहा उद्गार मेरा।"

जो कुछ हो, इन गीतों में एक मादक मस्ती वर्तमान है जो युवकों को अनुपम संतोष देती है। यहाँ कवि का, भाषा पर पूर्ण अधिकार है और संगीत भी भिन्न भिन्न प्रकार का रखा गया है।

'निशा-निमंत्रण' में बच्चन जी पूर्णतः गीत लेखक बन गए हैं। इस काल में कवि की भावना अत्यन्त तीव्र हो उठी है और उसकी व्याकुलता बहुत बढ़ गई है, अतएव उसने गीतों का सहारा लिया है। उसने रात्रि के आगमन से अवसान पर्यन्त तक के अनेक चित्रों को एक सौ गीतों में बाँध दिया है। दिन का अवसान हो रहा है, पथिक को भय

है कि कहीं मंजिल पर पहुँचने के पहले ही अंधकार बढ़ न जाय, अतः वह थका होने पर भी कदम बढ़ाता जाता है। चिड़ियाँ अपने बच्चों की याद करके तेजी से उड़ी जा रही हैं और कवि, वह एक दम शिथिल है। वह किससे मिलने के लिए शीघ्रता करे? इसी प्रकार के अनेक चित्र पुस्तक में वर्तमान हैं। इस पुस्तक की वेदना और विद्रोह दो प्रधान भावनाएँ हैं।

कवि ने कहीं अपने को राहगीर माना है तो कहीं भटका पंछी। वह जीवन के पथ पर चलते चलते थक गया है और मानव जीवन का क्लेश उसके व्यक्तित्व में मूर्तिमान हो उठा है। इस संसार के आकाश में भूले पक्षी की तरह वह कभी इधर उड़ता है और कभी उधर; पर उसे नीड़ का मार्ग नहीं मिल पाता। प्रत्येक गीत में एक प्रधान विचार होता है जिसकी पुष्टि में कवि प्रकृति के क्षेत्र से उदाहरण प्रस्तुत करता है और अन्तिम पद में वह साधारण सत्य कवि के जीवन से अभिन्न हो जाता है।

यहाँ प्रकृति वर्णन भी प्रचुर मात्रा में वर्तमान है। प्रकृति के साथ ही साथ वह अपनी दशा का भी वर्णन करने लगता है और कभी उसकी परिस्थितियों का प्रकृति से साम्य लक्षित होता है और कभी विरोध।

'बच्चन' जी की वेदना निराशा से ओत प्रोत है जिसमें भविष्य के लिए कोई भी आशा नहीं दिखाई पड़ती। 'महादेवी' जी में भी वेदना है पर उसमें मिलन का पूर्ण विश्वास है। बच्चन की निराशा के अनेक कारण हैं। ये गीत कवि के संघर्ष काल के हैं जब उसे अपनी पत्नी का वियोग सहना पड़ा था।

इन गीतों में तेरह पंक्तियों वाली शैली मिलती है जो सर्वथा मौलिक है। संगीत भी पूर्ण मौलिक है और भाषा पर तो कवि का पूर्ण अधिकार है ही। उर्दू के शब्दों का प्रयोग मनोहर मालूम होता है।

'निशा-निमंत्रण' के अनन्तर एकान्त-संगीत का काल आता है। यहाँ एकाकीपन की भावना को अधिक प्राधान्य मिलता है। कवि ने निशा निमन्त्रण के कल्पित साथी को भी विदा कर दिया है और उसे प्रकृति की ओट भी, जिसकी आड़ में वह पहले गा सका था, अच्छी नहीं लगती।

दुख बँटाने वाले साथी के अभाव में 'एकान्त संगीत' के कवि के ऊपर अधिक भार पड़ता है और उसकी इच्छा संसार से भाग जाने की होती है। निराशा अत्यधिक बढ़ जाती है। वेदना और क्लेश के इस पथ पर कवि निरन्तर बढ़ता जाता है; फलतः निशा-निमंत्रण से भी बढ़ कर अनुभूति एकांत-संगीत में देखने को मिलती है। संसार में उसकी कोई भी इच्छा पूरी न हो सकी। वह दिल खोलकर गा भी न सका— इसका उसे क्लेश है।

गिनती के गीत सुना पाया।
जब तन से फुरसत पाऊँगा,
नित नीरव गायन गाऊँगा,
यदि शेष रही मन की सत्ता, मिटने पर मिट्टी की काया॥

निराशा का यह प्रबल उद्वेग एकान्त-संगीत तक ही रह जाता है और 'आकुल-अंतर' में कवि की प्रगति एक नवीन दिशा की ओर दिखाई देती है—जहाँ आशा है, विश्वास है और पुरानी बातों को भूल जाने का प्रयास किया गया है।

कवि के जीवन का प्रत्येक परिवर्तन काव्य में लक्षित होता है, क्योंकि गीतों में कवि की शुद्ध अनुभूति ही अभिव्यक्ति पाती है; अतः यदि उसके अनुभवों के साथ ही उसके गीत भी बदलें तो क्या आश्चर्य। कवि के जीवन में सुखमय परिवर्तन हो गया है फिर वह क्यों न गाए—

"जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था,
वह टूट गया तो टूट गया,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गए फिर कहाँ मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर,
अम्बर कब शोक मनाता है ?
जो बीत गई वह बात गई ॥

इस प्रवृत्ति से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि कवि मिलन के अनेक उत्तम गीत लिख सकेगा।

३० जनवरी १९४८ को देश-वंद्य गांधी जी की हत्या हो गई। भारत ही क्यों सारा संसार शोक-मग्न हो गया। कवियों ने भी श्रद्धांजलि दी और 'पंत' जी तथा 'बच्चन' जी ने मिलकर 'खादी के फूल', नामक पुस्तक प्रस्तुत की। इसमें प्रारम्भ के १५ गीत श्री सुमित्रानन्दन पंत के हैं और शेष बच्चन जी के।

गांधी जी की हत्या से कवि अत्यन्त दुखी है। वह राष्ट्र के सभी महान् व्यक्तियों से इस विषय पर लिखने का आग्रह करता है। हिन्दी के कवि, उर्दू के कवि, सभी को वह सम्बोधित करता है—मैथिलीशरण, महादेवी, दिनकर, शिवमंगल सिंह सुमन, जिगर, फिराक, सरोजिनी, सागर, अरविंद सभी तक उसकी पुकार पहुँचती है। प्रारंभिक रचनाओं को देखने से ही बच्चन जी का 'देश-प्रेम' और गांधी जी के प्रति श्रद्धा स्पष्ट हो जाते हैं; अतएव इस दुखद घटना से उनका हृदय विचलित हो जाय, यह स्वाभाविक ही है।

कवि 'बापू' के आधार पर ही देश की रचना करना चाहता है—

"है हमें बनाना एक नया हिन्दोस्तान,
हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, ईसाई जिसमें समान ॥"

यद्यपि गांधी जी का पार्थिव शरीर नहीं रहा फिर भी उनकी ऊर्ध्वमुखी ज्योति ही मार्ग प्रदर्शन करेगी, यह कवि का दृढ़ विश्वास है। उसे साम्प्रदायिक विरोध पर खेद है।

'बच्चन' जी ने गांधी जी को पक्का हिन्दू माना है और उन्हें गौ, गंगा, गायत्री, गीता के समान पवित्र बताया है। गोखले के निधन पर चकवस्त ने जो शेर लिखे थे, उनको गांधी जी की मृत्यु पर प्रयुक्त किया गया है और गोस्वामी जी की दशरथ मरण के समय की उक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं।

'रघुपति राघव राजा राम' को लेकर सुन्दर-गीत रचना हुई है और 'गीता' के अंश भी उद्धृत किए गए हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का भी उल्लेख हुआ है। मृत्यु से कोई नहीं बच पाता, पर गांधी जी की मृत्यु असाधारण हुई—

"मरना जीवन की एक बड़ी लाचारी है,
उसके आगे खिलकत ने मानी हारी है,
बापू का मरना जीने की तैयारी है,
बापू का मरना सौ जीने से जोरदार !"

'खादी के फूल' के कवि ने व्यंगमयी शैली का सफल प्रयोग किया है—

"गोली जो हो जावे छाती के आरपार,
गोली जो करे प्रवाहित जीवन रक्तधार,
गोली जो कर दे टुकड़े टुकड़े श्वास तार,
एहसानमन्द भारत का उसको पुरस्कार।"

और कहीं कहीं विरोधाभास का भी अनूठा उदाहरण दिखाई पड़ जाता है—

"पर्वत सी आत्मा रखते थे तृण से तन में,
वे शाहंशाह छिपाए अपने भंगन में।"

एक स्थल पर उन्होंने बड़ी ही मनोहर रूपक-योजना प्रस्तुत की है जिसमें भारत के स्वतन्त्रता संग्राम को राजसूय-यज्ञ माना है तथा स्वतंत्रता को अश्व। फ़िरके बन्दी ने उस अश्व का पथ रोक दिया था; अतएव उसके नाश के लिए गांधी जी डट गए पर—

"यह कैसा मख-विध्वंसी पागल प्रकट हुआ ?
बलि की उसने भारत के भाग्य पुरोधा की।"

इस पुस्तक की भाषा उर्दूमयी खड़ी बोली है अतएव उर्दू के शब्दों को उदाहरण स्वरूप रखना व्यर्थ ही है। कुछ ग्रामीण-शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जैसे—'पिछलगुवा', 'अगोर', 'विरवा', आदि। इसमें अनेक प्रकार के छन्द व्यवहृत हैं; अतएव संगीत भी अनेक प्रकार का हो गया है। 'खादी के फूल' अपने ढंग की सफल और उत्तम रचना है। 'सूत की माला' भी गांधी विषयक रचना है।

'बच्चन' के गीतों में पांडित्य का पूर्ण अभाव है। हृदय के उद्‌गार बिना किसी कृत्रिमता के सीधे अपने प्रकृत रूप में व्यक्त हुए हैं। भाषा सरल और स्पष्ट होती है और उसके कारण भाव-धारा में किसी प्रकार की रुकावट नहीं पैदा होती। इन गीतों में छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है और संगीत का तत्व प्रचुर मात्रा में वर्तमान है। प्रारंभिक रचनाओं में ही कवि ने संगीतहीन कविता को व्यर्थ माना है—

"उस कविता को क्या देकर के नाम पुकारूँ कहो कहो।
जिसके अन्दर हो प्रयास खग-कल-स्वर स्वतः प्रवाह न हो॥"

'बच्चन' की प्रारंभिक रचनाओं में अनेक विषयों पर कविताएँ मिलती हैं जिनमें देशानुराग और प्रेम प्रमुख हैं। फिर उन रचनाओं का काल आता है जिनमें मादकता वर्तमान है। इसके अनन्तर निराशा-पूर्ण रचनाएँ होती हैं, फिर आकुल अंतर की आशा-किरण झलक जाती है। इन गीतों में कवि का व्यक्तित्व प्रबल रूप में निहित है अतएव इधर के कवि बच्चन जी से उसी प्रकार प्रभावित हुए हैं जैसे छायावाद युग के श्री सुमित्रानन्दन पंत से। 'बच्चन' जी के कुछ भाव अन्य कवियों से मिलते हैं। पन्त के प्रेम का प्रारम्भ जैसे 'मंजरित आम्र-द्रुम छाया' में होता है वैसे ही बच्चन जी भी जब उन पर प्रथम प्रेम का उन्माद छाया तब वृक्ष तले ही बैठे थे। 'पंत' जी के 'गीत-खग' की भाँति ही बच्चन जी का 'गीत-विहंग' है।

'प्रसाद' जी ने प्रेम-पात्र के प्रति लिखा है—

"मधु-राका मुसक्याती भी पहले जब देखा तुमको,
परिचित से जाने क्यों तुम फिर लगे उसी क्षण हमको।"

'बच्चन' जी भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

"आदि अनंत प्रेम का कैसा
मुझको तो अब लगता ऐसा
तुझे सदा से मैं करता था
इसी तरह से प्यार।"

कहीं कहीं 'रामायण' से भी कुछ अंश उन्होंने ले लिए हैं जो इनके प्रयोग से और अधिक सुन्दर बन गए हैं।—

कवि दुखी है, बरसात का समय है, रात्रि में वह अकेला है और तब

"सहसा उन अधरों पर आयी,
'घन घमंड' वाली चौपायी।"

गांधी जी ने अंत समय में राम राम कहा था। अंत काल में राम राम कहना कठिन है। गोस्वामी जी ने लिखा है—

"जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं।

इसी को 'बच्चन' जी ने इस प्रकार कहा है—

"कर कोटि जतन मुनि तन मन प्राण खपाते हैं।
पर अंत समय में राम नहीं कह पाते हैं।
तुमने अंतिम श्वासों से 'राम' पुकार लिया।
ऋषि मुनि दुर्लभ-पद आज सहज तुमने पाया।"

—रामधारी सिंह दिनकर—

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के प्रसिद्ध गीति-लेखक हैं। रेणुका, हुँकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत आपके प्रसिद्ध संग्रह हैं। आपने धूप-छाँह नाम की एक और रचना की है जो बालोपयोगी है और रवीन्द्र, सरोजिनी, लॉगफेलो, नगूची आदि की कविताओं के आधार पर प्रणीत है।

'रेणुका' के कवि की चित्तवृत्ति अस्थिर है। वह कभी प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर भाव विभोर हो जाता है और कभी दीनों की आह से कॉप उठता है। दीनों के प्रति करुणा की भावना तथा उनकी दयनीय दशा का चित्रण दिनकर जी को अधिक इच्छित हैं। इन गीतों में राष्ट्रीय चेतना का बहुधा प्राधान्य है। भारत के गौरव का कवि को पूर्णतः बोध है जैसा 'हिमालय के प्रति' से स्पष्ट हो जाता है—

मेरे नगपति मेरे विशाल
साकार दिव्य गौरव विराट।
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल॥
मेरी जननी के हिम किरीट।
मेरे भारत के दिव्य भाल॥

इस पुस्तक में कवि की सौन्दर्यमयी तथा प्रगतिवादी दोनों भावनाओं का मेल है।

'हुँकार' में आकर कवि पूर्णतः प्रगतिवादी बन गया है। यहाँ प्रौढ़ रचना शक्ति के दर्शन होते हैं। वह शोषितों का चित्रण करता है, दीनों के दुःख को अच्छी तरह समझ पाता है और कब्र के भीतर से आने वाली मृत भूखे बच्चों की दूध की पुकार सुनकर सहम जाता है। वह मेघमाला को मार्ग छोड़ देने का आदेश देता है, वह स्वर्ग लूट कर इन अभागे बच्चों को पूर्ण तृप्त कर देना चाहता है। इस पुस्तक में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति घोर विद्रोह की भावना दिखाई देती है। भारत-व्यापी घोर दरिद्रता से कवि की अन्तरात्मा सिहर उठी है, उसे दरिद्रता के इस भीषण चीत्कार के बीच किसी प्रकार का राग रंग भला नहीं प्रतीत होता। कवि 'नई दिल्ली' को सम्बोधित करके कहता है—

आहें उठीं दीन कृषकों की
मजदूरों की तड़प पुकारें,
अरी गरीबों के लोहू पर
खड़ी हुई तेरी दीवारें।

'रसवन्ती' में 'दिनकर' जी ने नवीन कार्य अपनाया है। उन्हें भी अपनी नवीनता का बोध है; अतएव उन्होंने पुस्तक की भूमिका में इसका उचित स्पष्टीकरण कर दिया है—

"..................मैं निवेदन करूँगा कि दिन भर के ताप में जलने वाले पहाड़ के हृदय में भी चाँदनी को पाकर कभी-कभी बाँसुरी का सा कोई अस्पष्ट स्वर गूँजने लगता है जो पत्थर की छाती को फोड़कर किसी जलधारा के बह जाने का आकुल नाद है।"

'रसवन्ती' में गीतों के प्रति शुभ कामना करता हुआ कवि याचना करता है—

आशीर्वचन कहो मंगलमयि गायन चले हृदय से।

❀ ❀ ❀

बड़े भाव से जिन्हें सजाया ये वे मुकुल हमारे,
जो बच रहे किसी विधि अब तक ध्वंसक इष्ट प्रलय से।

इस पुस्तक में कवि की सौन्दर्यमयी तथा प्रगतिवादी दोनों भावनाओं का मेल है।

'रसवन्ती' का कवि प्रगतिवाद की सीमा को दूर छोड़ सौन्दर्य-लोक में प्रवेश करता है। उसमें बुद्धिवाद का अभाव हो जाता है और सरसता तथा भावुकता का सम्यक प्रवाह।

गीतों में रस की प्रचुरता है और पुस्तक का नाम सार्थक प्रतीत होता है। यहाँ भी कवि को देश व्यापी दरिद्रता का बोध होता रहता है; पर बीच बीच में वह कभी कभी प्रसन्न भी हो जाता है—

"दाह के आकाश में पर खोल
कौन तुम बोलीं पिकी के बोल?"

कवि की सौन्दर्य-प्रियता अधिक बढ़ जाती है और वह प्राचीन उपकरणों में भी नवीन ढंग से सजाकर सौन्दर्य-सृष्टि करता है:—

ठगीं सी रुकी नयन के पास
लिए अंजन उँगली सुकुमार।
अचानक लगे नाचने मर्म
रास की मुरली उठी पुकार॥

यह वही प्राचीन काल की मुरली कितनी उत्तम मनोहर बन गई है। दिनकर' जी ने अपने अनेक गीतों को प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त कर अधिक सुन्दर बना दिया है।

जैसे—

गीत अगीत कौन सुन्दर है?
गाकर गीत विरह के तटिनी
वेगवती बहती जाती है,
दिल हल्का कर लेने को
उपलों से कुछ कहती जाती है;
तट पर एक गुलाब सोचता
'देते स्वर यदि मुझे विधाता
अपने पतझड़ के सपनों का
मैं भी जग को गीत सुनाता'
गा गा कर बह रही निर्झरी

पाटल मूक खड़ा तट पर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है।

बैठा शुक उस घनी डाली पर
जो खोते पर छाया देती
पंख फुला नीचे खोते में
शुकी बैठ अण्डे है सेती
गाता शुक जब किरण वसंती
छूती अंग पर्ण से छनकर।
किन्तु शुकी के गीत उमड़कर
रह जाते सनेह में सनकर;
गूँज रहा शुक का स्वर बन में

फूला मगन शुकी का पर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है।

दो प्रेमी हैं यहाँ एक जब
बड़े साँझ आल्हा गाता है
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है
चोरी चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है
हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
'विधना' यों मन में गुनती है
वह गाता पर किसी वेग से
फूल रहा इसका अन्तर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है ?

प्रगतिवाद के कठोर मार्ग पर चलने वाले कवि 'दिनकर' के लिये 'रसवन्ती' का शृङ्गार सुखप्रद रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कवि की सौन्दर्य-लिप्सा वासना से अछूती है, यह बड़े हर्ष की बात है। उसे नारी के अंगों के प्रति कोई लालच नहीं; अतः उसकी रसोक्तियाँ स्वस्थ और शुद्ध हैं। जहाँ वह एक ओर कहता है :—

तुम्हारे अधरों का रस प्राण वासना तट पर पिया अधीर।

वहीं उसने नारी को इस प्रकार याद किया है—

अरी ओ माँ हमने है पिया
तुम्हारे स्तन का उज्ज्वल क्षीर।

'द्वन्द्व गीत' में कवि उमर खैयाम से अधिक प्रभावित है। उसने जीवन-संघर्ष पर विचार किया है और नैराश्यमय भाग्य से बाहर आ दृढ़ निश्चय से अवगत हुआ है। इसमें कुल एक सौ से ऊपर पद्य हैं।

'दिनकर' जी के गीतों में राष्ट्र चेतना और सौंदर्य चेतना दोनों ही

वर्तमान हैं। उनमें भीषण गर्जन भी है और बाँसुरी की मधुरता भी, यही 'दिनकर' जी की विशेषता है।

—नरेन्द्र—

श्री सुमित्रानन्दन पंत से प्रभावित कवियों में नरेन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने 'पलाशवन' में कौसानी की प्रशंसा करते हुए अनेक बार 'हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण' को याद किया है। इनको भी अलमोड़े का सौन्दर्य उतना ही प्रिय है, जितना पंत जी को।

'नरेन्द्र' जी के गीतों में 'प्रेम' और 'क्रान्ति' का प्राधान्य है। रति और उत्साह दोनों ही सम्यक् रूप में उपस्थित हैं। समाज का अति-क्रन्दन प्रतिक्रिया से प्रबल होकर क्रान्ति के रूप में परिणत हो गया है और नारी के प्रति आकर्षण तथा अतृप्ति प्रेम-व्यथा के मूल में प्रवेश पा गए हैं। गीतों ही में क्यों, कहानियों में भी यह अतृप्ति बनी हुई है। 'शीराजी' में सुदूर सरहदी सूबे से लेकर कर्नाटक, कुमायूँ, बुन्देलखण्ड, पंजाब, बनारस तक की स्त्रियों का वर्णन किया गया है। कोई छरहरी नाज़नी है तो कोई मिरच मसाले सी चटपटी, किसी की माँस पेशियाँ चट्टानों सी दृढ़ हैं तो कोई स्थूलकाय और अधेड़ है, कोई रसगुल्ले सी मीठे और गोल गोल बोल बोलने वाली है। इन्होंने कर्ण-फूल, शूल फूल, प्रभात फेरी, प्रवासी के गीत, पलावशन, मिट्टी और फूल आदि पुस्तकों की रचना की है।

'कर्ण फूल', और 'शूल फूल' में नारी के प्रति कवि का पूर्णतः छायावादी दृष्टिकोण है जहाँ उसके प्रति प्रबल आकर्षण है; पर साहचर्य का पूर्णतः अभाव है। अतः कवि की इच्छा अन्तर्मुखी हो गई है। 'कर्ण फूल' का कवि प्रिय के गुणों की याद करता हुआ कहता है :—

"गुन गुन प्रिय के गुण गण गाने,
बन गया मधुप मन कर्णफूल।"

इन कविताओं में नारी के अंग-प्रत्यंग के प्रति कवि का प्रबल मोह लक्षित होता है। ये दोनों कवि की प्रारम्भिक रचनाएँ है।

'प्रभात फेरी' में कवि की चित्तवृत्ति इधर उधर भटकती है; वह राष्ट्रगीत भी लिखता है, प्रणय गीत भी लिखता है, प्राकृतिक सौन्दय पर भी मुग्ध होता है। पुस्तक के पूर्वार्द्ध में मिलन के मनोहर गीत हैं। "अब आते होंगे जीवन धन" "आज न सोने दूँगी बालम" आदि गीत अनेक सुन्दर चित्रों से युक्त है। यह मिलन भावना बड़ी ही मधुर है, पर इसकी स्पष्टता कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक लक्षित होने लगती है जैसे इन पंक्तियों में :—

"प्रिये अभी मधुराधर चुम्बन
गात गात गूँथे आलिंगन
सुने अभी अभिलाषी अन्तर,
मृदुल उरोजों का मृदु कम्पन,
आज लजाओ मत सुकुमारी।"

या

"मुरझाए प्यासे अधरों पर,
धीरे से धर सुकुमार अधर,
फिर इन पीताभ कपोलों पर,
रख मृदुल गुलाबी कोमल कर,
बहला मधु पिला चुकी हो तुम।"

पुस्तक के उत्तरार्द्ध में 'निराशा का स्वर' ऊँचा हो गया है। कवि अपने अस्तित्व को स्वप्न मानता है। निराशा की यह भावना नरेन्द्र की अनेक कविताओं में वर्तमान है।

'प्रभात फेरी' का कवि कभी नतशिर बन्दी की हथकड़ियाँ तोड़ना

चाहता है और कभी झीनी झीनी बीनी हरी साड़ी वाली, उभरे अंगों वाली वर्षा-बाला को देखकर मुग्ध हो जाता है। यहाँ राष्ट्र चिंतन भी है और प्रकृति प्रेम भी।

'प्रवासी के गीत' नामक रचना गीत-युग के उत्तरार्द्ध के अन्तर्गत आती है, अतः इसमें वास्तविकता बनी है। गीत युग के पूर्वार्द्ध का कवि कल्पना प्रिय, रहस्यवादी और सौन्दर्योपासक था। यहाँ एकाकीपन का प्राधान्य है और भौतिक प्रेम की व्याकुलता तीव्रतर हो गई है।

आयगा मधु मास फिर भी, आयगी श्यामल घटा फिर।
आँख भर कर देख लो अब मैं न आऊँगा कभी फिर॥

कभी कभी कवि प्रेयसी के पागलपन, उसकी असहाय अवस्था का बोध कर दुखी हो उठता है—

"पगली इन क्षीण बाहुओं में कैसे यों कसकर रख लोगी।"

प्रेम की इस उद्विग्नता के फल-स्वरूप उसके विचारों में भी विषमता दिखाई पड़ती है। कभी वह कहता है—

"यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय या निरुपाय होता।"

और कभी इस प्रकार कहने लगता है—

"चारु पथ वह विश्व में विख्यात जो आकाश गंगा
जहाँ प्रेमी चिर मिलन वरदान पाते हैं बिछुड़कर।
वहाँ हम तुम भी मिलेंगे बन्धनों से मुक्त होकर।"

अतः कभी उसे 'उस पार' के मिलन में अविश्वास होता है और कभी पूर्ण विश्वास।

कवि जीवन से सर्वथा निराश हो चुका है। कभी वह अपने प्राणों से पार्थिव शरीर को छोड़कर चले जाने की प्रार्थना करता है और कभी स्वयं प्राण दे देने का प्रयत्न। उसका जीवन उतना ही निराश है, उतना

ही हेय और अशुभ है, जितना मरघट के पीपल तरु का। कवि ह्रास और क्षय से ग्रस्त है तथा उसे जीवन के प्रति कोई भी आकर्षण शेष नहीं रहा है। हृदय की कायरता और मन की छलना के आधार पर जीवन की गति चलती जाती है। वह मानव की विवशताओं को अच्छी तरह समझता है और कहता है कि—

"है दो दिन का दर्शन मेला,
विवश, नियति शासित यह जीवन।"

इतना होते हुए भी पुस्तक के अन्त में एक गीत ऐसा मिलता है जिससे कवि की विचार-पद्धति में परिवर्तन लक्षित होता है, वह आशा-वादी बन जाता है—

"स्वप्न सुख के फिर हँसेंगे,
पूर्णिमा के चाँद से वे,
व्योम से उर में बसेंगे,
रोम हा प्रति रोम
प्रिय मिलन की कल्पना में,
चट पुलक बन जायँगे।
तू डर न मन
असमय घिरे घन जो
स्वयं हट जायँगे
फट जायँगे॥"

'छायावाद' की प्रणाली के अनुसार नरेन्द्र ने भी प्रकृति को अपनी भावनाओं से रंजित करके देखा है। उसने रात्रि को अपने ही समान पाया है—

"एक हैं हम
रातभर दोनों जगे हैं

स्नेह करुणा से पगे हैं
एक हैं हम
मैं वियोगी वह उनींदी रात
और दोनों ओर है कुछ एक सी ही बात।"

'प्रवासी के गीत' के कवि की नारी के प्रति वैसी ही भावनाएँ हैं, जैसी श्री सुमित्रानन्दन पंत की। पंत जी उसे 'देवि,' 'मा,' 'सहचरि,' 'प्राण' कहकर याद करते हैं और नरेन्द्र जी—

"क्रीत दासी, स्वामिनी, आराध्य हो आराधिका भी,
प्राण, मोहन कृष्ण हो तुम शरण अनुगत राधिका भी।"

कहीं-कहीं कवि उदू की शायरी से प्रभावित हो गया है जैसे—

"गल गया हिम कब गलेंगे तुम्हें मुझसे छीनने वाले कुलिश पाषाण।"

उदू के शायर भी तो अपने मिलन की इच्छा पूरी करने के लिए प्रेमास्पद के पिता तक के मरने की कामना करते हैं।

कवि ने कहीं-कहीं 'अमूर्त' को 'मूर्त्त' रूप दिया है जो छायावाद की विशेष प्रथा है—

"नाम ले लेकर हमारा,
खींचता आँचल तुम्हारा,
क्या कभी सुनसान?"

'प्रवासी के गीत' में दो तीन और चार छन्दों के अनेक गीत हैं। इसकी भाषा खड़ी बोली है जिसमें कुछ उदू के शब्द जैसे 'शमा' 'शिकन' इत्यादि भी मिले हुए हैं। कहीं-कहीं शब्दों का अशुद्ध और ग्रामीण रूप भी देखने को मिल जाता है जैसे—'आसरा' 'मूरख' 'बाट' और 'मरम'।

'पलाश बन' के गीत भी भौतिक प्रेम की पीड़ा से भरे पड़े हैं।

"अब तो तुम्हें और भी मेरी याद न आती होगी।"

इसी गीत में एक अत्यन्त मनोरंजक चित्र भी है जिसमें गाँवों की एक प्रचलित प्रथा की उत्तम अभिव्यक्ति हुई है—

"कौन देश से आवेंगे पिय,
हँस हँस कहती होंगी .सखियाँ,
घेर तुम्हें आँगन म बैठी,
आमी चीर उछाल बिजलियाँ,
तुम्हें खीझ फिर हँसी कभी बरबस आ जाती होगी।"

कवि चाँदनी में घूमने की इच्छा करता है। अपनी प्रेयसी को साथ लेकर वह सारस की जोड़ी सा रहना चाहता हैं। 'रूप शिखा' में उसने प्रेयसी के सौन्दर्य का उत्तम वर्णन किया है।

वह जीवन के अन्य पक्षों पर भी विचार करता है। सुख दुख दोनों ही अस्थिर हैं इसे वह अच्छी प्रकार जानता है और यह भी जानता है कि सुख दुख मय इस विधान को स्वीकार करने के लिए मनुष्य विवश है—

"सुख दुख के पिंजर में बन्दी कीर धुन रहा शिर बेचारा।"

प्रकृति कवि की भावनाओं से ही रंगीन हो गई है। 'चाँदनी', 'खुली हवा', आदि गीत अनेक सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से पूर्ण हैं। कवि की भावना कहीं प्रकृति से मेल खाती है और कहीं-कहीं विरुद्ध हो जाती है। अस्ताचल गामी 'चाँद' उसे अपने टूटे दिल सा दिखाई देता है और रात्रिभर कवि के साथ-साथ चलता है। पलाश की डालियों में वह अपने ही हृदय की आग देखता है—

"लो डाल डाल से उठी लपट लो डाल डाल फूले पलाश
यह है वसंत की आग लगा दे आग जिसे छू ले पलाश।"

उसे पीड़ा तब होती है ज़ब वह कड़वी वस्तुओं को भी ऐसी दशा में

सौन्दर्य प्रदान करते हुए पाता है जब वह स्वयं पीड़ित है और सौन्दर्य सृष्टि में असमर्थ। यहाँ उसका हृदय प्रकृति से नहीं मेल खाता—

"आज कड़वा नीम मीठी गंध
अग- जग को लुटाता,
और मैं छिद वेदना से
खार के आँसू बहाता।"

पुस्तक के अन्तिम तीन गीत प्रगतिवाद की भावना से पूर्ण हैं। 'फागुन की आधी रात' का वर्णन करते हुये जहाँ कवि 'गजनेरी सॉड़'—और 'बदचलन-कहारिन' को उपस्थित करता है, वहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका यथार्थ दर्शन का दृष्टिकोण प्रगतिवादी है जिसमें मर्यादा के लिए कोई स्थान नहीं। 'वासना की देह' में नारी के नग्न शरीर का चित्र है—

'व्यक्त वाणी से परे हैं रुँध गयी है पीर।
शून्य संज्ञा उड़ गया उद्दाम आँधी में विवश ज्यों चीर।
नग्न नारी देह, थर थर काँपती वह देह
वसन भूषण से परे वह वासना की देह॥'

यह चित्र इतना नग्न है कि इसकी ओर पाठक की निगाहें नहीं उठ पातीं। यहाँ भी प्रगतिवाद का कठोर यथार्थवादी दर्शन है। 'ज्येष्ठ के मध्याह्न में' कवि ने देखा है :—

"छप्पर छाता चुपचाप एक मरियल चमार।"

यहाँ वह आर्थिक विषमता की ओर संकेत करता हुआ पीड़ितों का चित्र उपस्थित करता है।

पलाशवन में कवि अन्य कवियों से भी प्रभावित हुआ है। कहीं-कहीं वर्णन में वह पंत जी के समान शब्द योजना उपस्थित करता है—

"सुन्दर से भी सुन्दर तर,
सुन्दर तर से सुन्दर तम।
सुन्दर जीवन का क्रम रे,
सुन्दर सुन्दर जग जीवन!"
—पंत

'वह सुन्दर से सुन्दरतर है।'
सुन्दरतम है वह कूर्माचल।'
—नरेन्द्र

एक स्थान पर वह 'ब्राउनिंग' के समान कहने लगता है—

"सब ओर कुशल, ईश्वर ऊपर
निश्चिंत शांत बन के प्राणी,
"God's in his Heaven
All's right with the world"

और दूसरी जगह शैली की भाँति—

शीतल कर धरती की छाती,
नदियाँ सागर में मिल जातीं।
नदियों में जल, जल में लहरें,
गलबय्याँ डाले बल खातीं॥"

"Fountains mingle with the river
And rivers with the ocean"

इस पुस्तक की भाषा उच्च प्रकार की खड़ी बोली है जिसमें कुछ उर्दू के शब्द भी मिले हैं, जैसे 'सैलाब', 'लब', 'बेबसी'। 'अनेक ग्रामीण शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे :-'दीठ', 'चंदा' आदि।

"मिट्टी और फूल" कवि की नवीन रचना है जिसके प्रति स्वयं उसने कहा है—

'मिट्टी और फूल' में स्वयं मेरे अन्तर्संघर्ष को ही प्रधानता मिली है। इसके रचनाकाल में बुद्धि और भावुकता के बीच मेरे मन में जो द्वन्द्व युद्ध छिड़ रहा है, 'पलाशबन' में उसका पूर्वाभास मेरे पाठकों को मिल चुका होगा..........

इस पुस्तक में भी अनेक संयोग वियोग के चित्र हैं—कवि कारागार में बन्दी है—

"स्वजनों से दूर,
दूर निज प्रियजन से।
बंद यहाँ
मन्द मन्द जलता मैं चिन्तन से
आते जो विचार
हो जाते क्षार क्षार
जल जल कर क्षण भर को पावक के कण से
पंख लगा अनायास
आते फिर स्वप्न पास
घर में घिर अपनों से
बैठता प्रवासी............

उसे प्रकृति में भी आनन्द मिलता है जिससे वह बातें करता है और मन बहलाता है। यहीं कवि ने मुक्त हृदय से क्रान्ति-पंथको स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि बदल गई है; अतएव सारा संसार बदल गया है। वह सर्वथा प्रगतिवादी हो गया है। पहले के स्वप्नों को तोड़कर वह वस्तुस्थिति का दर्शन करता है। 'नरेन्द्र' का प्रगतिवाद-प्रेम 'पलाशबन' से ही दिखाई पड़ गया था, वह 'मिट्टी और फूल' में पूर्णता को प्राप्त हो गया है, यद्यपि वह निम्नकोटि का प्रगतिवाद नहीं है जहाँ केवल

किसान मजदूरों का रोदन ही होता है। यहाँ सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण भी किया गया है।

'नरेन्द्र' की भाषा शैली अपनी है। यद्यपि कवि श्री पंत, निरालाजी, बच्चनजी आदि कलाकारों से प्रभावित हुआ है, तथापि उसका अपनापन उसे सबसे अलग रखता है। इसमें पंत जी का प्रकृति प्रेम है, निराला जी के समान पुरुषार्थ है और बच्चन जी की सादगी। उसकी अनुभूति अत्यन्त तीव्र एवं प्रौढ़ है। कुछ गीत साधारण कोटि के भी हैं। छन्दों का सफल प्रयोग हुआ है और भाषा अपने प्रकृत रूप में व्यक्त हुई है। निःसंदेह नरेन्द्र उच्चकोटि के गीत-लेखक हैं।

—माखनलाल चतुर्वेदी—

श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी ने 'एक भारतीय आत्मा' नाम से काव्य रचना की है। 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी' नाम से आपके दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें १९०८ से लेकर १९४६ तक के गीत संगृहीत हैं। यद्यपि ये गीत समय के विस्तृत क्षेत्र में दूरी-दूरी पर विकीर्ण लक्षित होते हैं, फिर भी सब में एक सा ही यौवन का तत्व वर्तमान है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि कवि भावलोक में सर्वदा युवा ही रहा है।

इन गीतों में देश-प्रेम का स्वर अधिक ऊँचा है। कवि का जीवन भी तो देश के लिये अर्पित हो चुका है; अतएव यह स्वाभाविक ही है कि उसका काव्य देशभक्ति से ओत-प्रोत हो। उसके गीत साहस और कर्मशीलता की प्रेरणा देने वाले हैं।

'मात्रभूमि है उसकी जिसको
उठ जीना आता है
दहनभूमि है उसकी जो
क्षण-क्षण गिरता जाता है।'

देशभक्ति के प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर कवि प्रत्येक विपत्ति से, प्रत्येक प्रहार से उमंग और आत्मबल ग्रहण करता है, इसी से उसके गीत भी नैसर्गिक शक्ति से पूर्ण हैं। आज के निर्बल गीतों को, वासना-जर्जर मनोभावों को वह रंच मात्र भी महत्व नहीं देता—

'गान? जब मस्तक उठा
काँपा न नभो वितान
भिनभिनाती मक्खियाँ भी
लिख रही हैं गान'

विदेशी सत्ता के अंधकार पूर्ण शासन काल में देशप्रेम सब के लिये सुलभ नहीं था। उसका प्रकाश केवल उन्हीं हृदयों में था जो बलि के लिये प्रस्तुत थे। ऐसे व्यक्तियों को विद्रोही कहा जाता था। 'एक भारतीय आत्मा' के अनेक गीत प्राणोत्सर्ग और विद्रोह से पूर्ण हैं। उसे बलि पथ से होकर प्रियतम के द्वार तक पहुँचने का मार्ग ज्ञात था; अतः उसकी आकांक्षा थी—

'बलिशाला ही हो मधुशाला
प्रियतम पथ हो देश निकाला
प्राणों का आसव हो ढाला
गिरै न उसमें दाग री
यौवन मद झर सखि जाग री!'

मातृभूमि को स्वतंत्र करने के प्रयत्न में माखनलाल जी को अनेक बार जेल यात्रा करनी पड़ी थी; किन्तु वह जीवन भी उन्हें प्रिय था—उसी से लक्ष्य की सिद्धि जो होती थी। उनकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

'क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना
हथकड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना

कोल्हू का चर्रकचूँ जीवन की तान
मिट्टी पर अंगुलियों ने लिक्खे गान'

जबलपुर सेन्ट्रल जेल में बन्द कवि ने 'कैदी और कोकिला' शीर्षक एक अत्यन्त सफल कविता लिखी है। काली रात्रि में बोलने वाली कोकिला उसे विचार-मग्न कर देती है और वह चारों ओर अंधकार देख कर बोल उठता है—

काली तू रजनी भी काली
शासन की करनी भी काली
काली लहर कल्पना काली
मेरी काल कोठरी काली
टोपी काली कमली काली
मेरी लोह शृंखला काली
पहरे की हुँकृति की व्याली
तिस पर है गाली ऐ आली
इस काले संकट सागर पर
मरने की मदमाती,
कोकिल बोलो तो।
अपने चमकीले गीतों को
क्यों कर हो तैराती?
कोकिल बोलो तो॥

परन्तु शीघ्र ही उसे वास्तविकता का बोध हो जाता है और वह अपनी तथा कोकिला की परिस्थिति में महान अंतर देख पाता है—

'तुझे मिली हरियाली डाली
मुझे नसीब कोठरी काली

तेरा नभ भर में संचार
मेरा दस फुट का संसार !'

ये पंक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं। यह कोकिला क्या कवि की भाव कोकिला जैसी नहीं है ? निस्सन्देह यह गीत साहित्य निधि का अमूल्य रत्न हैं। कवि का विश्वास है कि केवल संकल्प से कुछ नहीं हो पाता, उसके साथ कर्म की आवश्यकता है। प्रलय के उपरांत ही नवीन सृष्टि होती है, यह भी वह समझता है; अतएव उसने सचेत किया है—

'खून हो जाये न तेरा देख पानी
मरण का त्यौहार जीवन की जवानी।'

'हिमकिरीटिनी' के अनेक गीत भक्ति से पूर्ण हैं और उनमें 'अशेष' के साथ 'शेष' की क्रीड़ा आकांक्षा है।

'अरे 'अशेष' ! 'शेष' की गोदी तेरा बने बिछौना सा।
आ मेरे आराध्य खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा॥'

भक्ति ही वह शक्ति केन्द्र है, जहाँ से कवि को कर्तव्य-शीलता और अपार साहस प्राप्त हो सका है—

'हरि को हीतल में बन्द किये केहरि से कह नख हूल हूल'

कवि का रहस्यमय आराध्य सर्वत्र वर्तमान है। उसके गीतों में उसके प्राणों में वह सब कहीं बसा हुआ है और उसे कवि ने भी जान बूझकर अपने गीत-चित्रों में बन्द कर लिया है।

इन गीतों में अनेक चिंतन प्रधान मधुर पंक्तियाँ हैं जिनमें कवि ने सरल ढंग से गूढ़ तथ्यों का निरूपण किया है। उसे जीवन की वास्तविकता का बोध है—

'लोग कहें चढ़ चली उमर में
पर मैं नित्य उतरती हूँ सखि।'

और उसे समय की द्रुत गति का भी परिज्ञान है—

'किस के पंखों पर भागी जाती हैं मेरी नन्हीं साँसे ?'

माखनलाल जी प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। अपने गद्य में तो उन्होंने नर्मदा और उसके तट पर उगे हुए हरसिंगारों का स्मरण किया ही है, पद्य में भी अनेक प्राकृतिक चित्र अंकित किये हैं, जिनसे उन्हें बहुधा कर्म की प्रेरणा मिलती है। कवि का का कथन है—

'मैं बलि का गान सुनाती हूँ प्रभु के पथ की बनकर फकीर
माँ पर हँस हँस बलि होने में खिच हरी रहे मेरी लकीर।'

वे प्रकृति के अनेक तत्वों का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो जाते हैं। कभी कभी उन्हें यह देखकर क्लेश भी होता है कि प्रकृति तो संसार में स्वर्ग की स्थापना कर रही है और मनुष्य उसे कुम्भीपाक बना रहा है।

'एक भारतीय आत्मा' के गीत कलापूर्ण हैं। छायावादी गीतकारों की भाँति इन्होंने भी मानवीकरण का सफल प्रयोग किया है। झरना से कवि पूछता है—

'किस निर्झरणी के धन हो पथ भूले हो किस घर का
है कौन वेदना बोलो कारण क्या करुणा स्वर का ?'

कहीं-कहीं विचित्र उपमायें रख दी गई हैं जो अधिक आकर्षक हैं। एक तारों-भरी रात देखिये :—

उड़ने दे मुझको तू उस तक
जिसने हैं अंगूर बखेरे
सिर पर नीलम की थाली में

गीतों की भाषा भावों के अनुरूप है। अनेक प्रादेशिक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे 'फुनगियाँ', 'लख', 'भभूत' आदि और 'दफनाना', 'जमना', 'दिलवर' जैसे और कई उर्दू के शब्द व्यवहृत हैं।

चतुर्वेदी जी ने अपनी कविताओं में प्रतीकों और रूपकों का अधिक प्रयोग किया है; अतएव अनेक गीत क्लिष्ट हो गये हैं, क्योंकि रूपकों और प्रतीकों का सम्यक बोध होने पर ही गीतों का वास्तविक आनन्द मिल पाता है। आप विज्ञापन से दूर भागते हैं। केवल अपने मित्रों का आग्रह रखने के लिये ही आपने इतने वर्षों में दो काव्य पुस्तकों को प्रकाशित कराया है और वह भी इस 'उपालम्भ' के साथ—

'एक पत्थर बेगढ़ा सा
पड़ा था जग ओट लेकर
उसे और नगण्य दिखलाने
नगर रव बीच लाये।'

—भगवतीचरण वर्मा—

आधुनिक युग के सफल कलाकारों में श्री भगवतीचरण वर्मा का उच्च स्थान है। आप उत्कृष्ट उपन्यास लेखक हैं, आपने निबंध रचना की है, साहित्यिक गीतों का प्रणयन किया है तथा चित्रपट के लिये गाने लिखे हैं और विशेषता यह कि हर क्षेत्र में आप सफल रहे हैं।

'मधुकण' के प्रकाशन काल में छायावादी कविताओं का घोर विरोध चल रहा था। वर्मा जी ने इस पुस्तक की भूमिका में छायावाद की विवेचना की है और भ्रमों के निराकरण का प्रयत्न किया है।

कवि को जीवन की वास्तविकता का पूर्ण बोध है, वह उससे मुँह भी नहीं मोड़ना चाहता; इसलिए उसके गीतों में न तो रहस्योक्तियों के आश्रय में वास्तविकता को भूलने की चेष्टा की है और न कल्पना के कोमल पंख लगाकर उड़ने का प्रयत्न। वहाँ छायावाद के माधुर्य के साथ ही प्रगतिवाद का नग्न सत्य वर्तमान है। मानव जीवन की सीमा-बद्धता कवि को विशेष खलती है—

'कुछ अजब हैरान सा हूँ मैं जिधर को देखता हूँ
है उधर ही एक उलझन एक सीमाबद्ध जीवन।'

और वह जीवन दर्शन भी नहीं समझ पाता—

'किसलिये यह जन्म का क्रम
किसलिये अस्तित्व का भ्रम'

सचमुच अनेक विवशताओं से ग्रस्त यह जीवन किसी काम का नहीं।
अभिलाषाओं से पूर्ण मानव-संसार को वह विषादमय पाता है। रूप और यौवन भी तो बहुत दिनों तक नहीं चल पाते—

'रूप राशि से भरा हुआ है यह समस्त संसार
रूप राशि पर मत इतराना रूप राशि है हार
तुम्हारा मद से उन्नत भाल !

और यह वसुधा का भण्डार
जिसे तुम कहती हो यौवन
निराला जिसका आकर्षण
एक पल रंग राग नर्तन
स्वप्न के सुख का छोटा क्षण
यही है सकल तुम्हारा धन।'

और यौवन की अतृप्ति अनंत प्रतीत होती है।

कवि के प्रेम-गीत मार्मिक हैं। किसी के आगमन के साथ ही उसका सूना जीवन कोलाहलमय हो उठता है—

'उठ पड़ा दर्द सा बन कर
है इसको कठिन छिपाना
—मेरे सूने जीवन में
हे देवि ! तुम्हारा आना।'

प्रेम की प्यास कभी तृप्त ही नहीं होती । हो भी तो कैसे—

'युग युग का वियोग पलभर का प्रियतम का सहवास
तृषित नयन, मन तृषित श्रवण, रह गयी अपूरन आस
सखी री प्रबल प्रेम की प्यास ।'

प्रगति का प्रेमी कवि कहीं कहीं उद्दाम वासना के चित्र भी अंकित कर देता है । यह प्रेम की विवेचना महत्वपूर्ण है ।

भगवतीचरण जी की कविताओं में पूँजीवाद का नग्न चित्र वर्तमान है । प्रगतिवाद के क्षेत्र में आपकी 'भैंसा गाड़ी' का अधिक महत्व है । इसमें कवि ने स्वदेश के दीन हीन कृषकों का समीप से जाकर सहानुभूति-पूर्ण चित्रण किया है—

'पर इस प्रदेश में जहाँ नहीं उच्छ्वास भावनायें चाहें
वे भूखे अधखाये किसान भर रहे जहाँ सूनी आहें
नंगे बच्चे चिथड़े पहने मातायें जर्जर डोल रहीं
है जहाँ विवशता नृत्य कर रही धूल उड़ाती हैं राहें'

'मधुकण' में क्रांति की कामना की गई है और बादल के भयानक रूप का ध्यान करता हुआ कवि उससे महानाश की प्रार्थना करता है—

'गगन पर घिरो मंडलाकार
अवनि पर गिरो वज्र सम आज
गरज कर भरो रुद्र हुँकार
यहाँ पर करो नाश का साज ।'

हिन्दू जाति की प्रचलित रूढ़ियों के नाश की चेष्टा करते हुए कवि ने उसे बहुत फटकारा है—

'भेदभाव के दास धर्म के अविकल साधक
विधवाओं के काल और गायों के पालक
पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार ।'

ऐसे स्थलों पर उसका दृष्टिकोण सर्वदा बुद्धि-प्रधान रहा है।

कवि को वर्णनों में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। किसानों के अस्वस्थ और कृशकाय बच्चों को देखिये—

'थे क्षुधाग्रस्त बिलबिला रहे मानो वे मोरी के कीड़े।
वे निपट घिनौने, महापतित बौने कुरूप टेढ़े मेढ़े॥'

वर्मा जी ने स्थान स्थान पर विचित्र उपमाओं का प्रयोग किया है। मूर्त के लिये अमूर्त उपमाओं का विधान किया है, साथ ही इस क्षेत्र में नवीनता का सृजन भी—

'भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुये कुछ कच्चे घर'

इनकी भाषा ओज और प्रसाद गुणों से युक्त है। उसमें उर्दू के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया गया है। गीतों में उत्तम प्रवाह तथा स्वाभाविक सरलता की प्रचुरता है। 'मधुकण' 'मानव' 'प्रेमसंगीत' आदि कवि की गीत पुस्तकें हैं।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—

पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन उत्तम कलाकार हैं। आपके व्यक्तित्व में राजनीति और साहित्य का मनोहर संयोग है; अतएव आपके गीत भी दो प्रकार के हैं—राष्ट्रीय गीत और प्रेमगीत। आपके दीर्घ एकाकी जीवन में अनुभूति की तीव्रता और संवेदना की मात्रा प्रचुर परिमाण में वर्तमान रही है जिसके आधार पर आपका कवि सर्वदा मुखर रहा है।

'नवीन' जी को बहुत दिनों तक श्री गणेश शंकर जी विद्यार्थी के साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था; अतः इनके गीतों का राष्ट्रीय होना स्वाभाविक ही है। इनके अनेक गीतों में देश प्रेम की उत्कृष्ट झलक दिखाई देती है। कभी-कभी तो इन्होंने मातृभूमि की मुक्ति के

निमित्त क्रांति तक का आह्वान किया है। इनका विप्लव-गीत अधिक लोक-प्रिय रहा है—

"कवि कुछ ऐसी तान सुना दो,
जिससे उथल पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आयें एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुँवाधार जग में छा जाये,
बरसे आग जलद जल जाये भस्मसात भूधर हो जाये,
पाप पुण्य सद्सद् भावों की धूल उड़े उठ दायें बाँये,
नभ का वक्षस्थल फट जाये तारे टूक टूक हो जायें।"

इनके प्रेम-गीतों की विदग्धता प्रशंसनीय है, जिन्हें इनके अविवाहित जीवन से सर्वदा बल मिलता रहा है। देखना है कवि के विवाहित जीवन की अनुभूतियाँ कैसी होती हैं! इन प्रणय-गीतों में आशा, निराशा, वेदना, ममता, अतृप्ति सब के दर्शन होते हैं—

'मेरा यह जीवन एकाकी
मेरे जीवन में सूनापन
मम जीवन में अमित वेदना
रिक्त रिक्त सा यह मेरा मन

यह प्रेम सर्वथा भौतिक है तभी तो—

'एक चुम्बन ही हुआ अभिशाप जीवन का भयंकर
अधर सम्मेलन हुआ अनुताप जीवन का भयंकर
आज सहसा फूट निकली अग्निधारा तीव्र दुस्तर
एक चुम्बन बन गया अभिशाप जीवन का भयंकर

'नवीन' जी के कुछ गीत पाश्चात्य शैली में प्रणीत हैं और कुछ भारतीय ढंग पर जिनमें राग ताल आदि का ध्यान रखा गया है—

(राग विहाग, तिताला)

बह चली आज कैसी बयार
खोलो अतीत का जटिल द्वार

इनके गीतों में वीर और शृङ्गार रस की प्रधानता है।

पं० बालकृष्ण शर्मा ने शब्द-प्रयोग में पूर्ण स्वच्छन्दता का प्रदर्शन किया है, जिसके फलस्वरूप अनेक प्रादेशिक शब्दों का निःसंकोच व्यवहार हुआ है। उर्दू शब्दों के प्रयोग में तो इन्हें विचित्र सफलता मिली है—

नयनों में भरी खुमारी थी पलकें कुछ भारी भारी थीं
तुमने देखा था यूँ गोया कुछ बहुत पुरानी यारी थी
उस दिन ही से हो गई हमारी आँखें जरा विरानी सी
जब तुम आईं पहिचानी सी।'

—जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'—

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के गीतों में ओज की प्रधानता है। कवि ने भारतीय युवकों को कर्म पथ पर अग्रसर होने का आदेश दिया है। कर्म की प्रेरणा तथा आत्मीयता के कारण ही मिलिन्द जी युवकों के परमप्रिय कवि हैं। 'जीवन संगीत' और 'नवयुग के गीत' इनकी रचनायें हैं। किशोरों और कुमारों को सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा है—

'मेरे किशोर ! मेरे कुमार !
अग्नि स्फुलिंग विद्युत के कण तुम तेज पुञ्ज तुम निर्विवाद
तुम ज्वाला गिरि के प्रखर स्रोत तुम चकाचौंध तुम वज्रनाद
तुम मदन दहन दुर्धर्ष रुद्र के वह्निमान दृग के प्रसाद
तुम तप त्रिशूल की तीक्ष्ण धार मेरे किशोर मेरे कुमार।'

—हरिकृष्ण प्रेमी—

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के गीत निराशा और विप्लव की भावना से सम्पन्न हैं। कवि क्रांति का उपासक है; अतः उसे संतोषी और सुखी प्राणियों को कुछ भी आदेश नहीं देना है; वह तो वैभव का शत्रु है तथा समाजगत आर्थिक विषमता का घोर विरोधी। उसके हृदय में पीड़ितों और शोषितों के प्रति अधिक संवेदना है—

"मुझे उन्हें आँखें देनी हैं निज अभाव जो देख न पाते
जो जुल्मों को भाग्य समझकर निर्विकार हो सहते जाते"

'प्रेमी' जी के गीतों में जिज्ञासा और रहस्य की भी कमी नहीं। इन्होंने भी रहस्यवादी कवियों जैसी उस पार की कल्पना की है जो आकर्षक है—

"सुनती हूँ पार क्षितिज के प्रियतम का सुन्दर घर है।
जिसके चरणों को छूने झुक गया वहीं अम्बर है॥"

—मोहनलाल महतो वियोगी—

श्री मोहनलाल महतो वियोगी के अधिकांश गीत प्रेम विषयक हैं। इनमें संगीत का मनोहर योग है—कवि ने कवित्त सवैया आदि मुक्तकों की भी रचना की है और गीतों को भी लिखा है। इनके सवैये भी गीतों जैसे मधुर हैं। अनेक गीतों में रहस्योक्तियाँ भी पाई जाती हैं। सिनेमा का एक प्रसिद्ध गीत है—'काया का पिंजरा डोले रे एक साँस का पंछी बोले' इसी से मिलता जुलता मोहनलाल जी का निम्नलिखित गीत कितना भावपूर्ण सरस तथा संगीतमय है—

'साईं का पंछी बोले रे साईं का पंछी बोले
साजन का है बाग अनूठा सब कुछ सच्चा सब कुछ झूठा
रीझा सो पछताता लौटा पाया मीठा फल जो रूठा
खुला खेल है देखे जब तू घूँघट का पट खोले रे।
साईं का पंछी बोले।'

'निर्माल्य' 'एक तारा' 'कल्पना' आदि कवि की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

—अज्ञेय—

श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' उत्तम कथाकार हैं, फिर भी इनके गीत सफल और उच्चकोटि के हैं। इन गीतों में विरह मिलन की प्रधानता है। इन्होंने प्रेम को विरह-प्रधान माना है—मिलन तो रात्रि जैसा है उसमें प्रेम का वास्तविक स्वरूप छिपा रहता है—वियोग प्रात सा है जब प्रेम अपने मौलिक स्वरूप को विश्व के समक्ष रखता है—

'प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा
विरह की पीड़ा नहीं तो प्रेम क्या जीता रहेगा
जो सदा बाँधे रहे वह एक कारावास होगा
घर वही है जो थके को रैन भर का हो बसेरा
पूछ लूँ मैं नाम तेरा।'

इनके अनेक गीत प्रेम के मधुर भार से नम्र होकर अत्यन्त आकर्षक हो गये हैं जिनमें मीठी शब्द योजना के साथ ही भावना का प्रकृत रूप उपस्थित है। कवि की स्मृति कितनी करुण है—

'दूर वासी मीत मेरे
पहुँच क्या तुम तक सकेंगे काँपते ये गीत मेरे?'

—पद्मकांत मालवीय—

पंडित पद्मकांत मालवीय को संगीत का उत्तम ज्ञान है। आधुनिक गीत लेखकों में कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें मधुर शब्द योजना शक्ति के साथ ही मधुर कंठ भी प्राप्त है। मालवीय जी इसी प्रकार के कवि हैं। 'हालावाद' इनके लिये अतिशय आकर्षक रहा है। इनके प्रेम-गीत अधिक प्रसिद्ध हैं।

पद्मकांत जी के गीत प्राचीन भारतीय संगीत पद्धति पर भी प्रणीत हुये हैं—

(राग भैरवी ठेका दीपचंदी मात्रा १४)

'आज तक प्रियतम न आये।
लोचनों में छा गई है उर उदधि की लहर उठ कर।
वायु सी हिय की उसासें कर रही हैं नाद हर हर॥
नयन में घन छा गये हैं पर बरसता है न पानी।
मान यह भी कर रहे हैं एक तुम ही हो न मानी॥
पर कहाँ तक नाथ हिय अपनी व्यथा जग से छिपाये?'

कवि के अनेक गीत रहस्यमय हैं। उसे पीड़ा से प्रेम है और उसका व्यक्तित्व वेदना प्रधान है। भाषा सरस है जिसमें उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

—द्विज—

श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' के गीतों में अनुभूतियों की प्रधानता है; अतएव भावाभिव्यक्ति सर्वथा अलंकारहीन और स्वाभाविक हुई है। कवि को लौकिक प्रेम के वियोग पक्ष का मार्मिक अनुभव है जो सर्वथा अभावमय होता है। वह अभाव की पूजा करता है—

'करो विचलित मत मुझको देव! दिखाकर कुछ देने का चाव,
साधना की वेदी पर बैठ पूजने दो यह अमर अभाव,
इसी में हो तुम, हूँ मैं और इसी में भरा तुम्हारा प्यार।'

द्विज जी के गीतों में वेदना भरी है और उनका काव्य व्यथा के स्पन्दन से पूर्ण है।

—आरसी प्रसाद—

श्री आरसी प्रसाद के गीतों में मिलन, विरह, निराशा और जीवन

की क्षण-भंगुरता के अनेक स्पष्ट चित्र चित्रित है। मानव जीवन कितना क्षणिक है—

'बुलबुला था एक उठकर मिट गया तत्काल ही जो !'
साथ ही उसमें दुख का कितना भयानक विस्तार है—
'मोम के लघुदीप सा भवताप में मैं गल रहा हूँ।'

वियोग की प्रबलता उसे जीवन का अंत तक कर देने को बाध्य करती है। आज की आवश्यकताओं को देखते हुये इसे साहित्य की स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं मानी जा सकती-

'है पता किसको कहाँ मैंने प्रणय की बेलि बोई
और मेरे आँसुओं से रात कितनी बार रोई
हाय पत्थर की जगह मैं हो गया मानव अभागा
मैं मरूँगा क्या न मुझको रोक सकता आज कोई ?'

—सियारामशरण गुप्त—

बाबू सियारामशरण जी ने अपने अग्रज बाबू मैथिलीशरण जी की भाँति काव्य के विभिन्न स्वरूपों का प्रणयन किया है। इनके अधिकांश गीत देशभक्ति से पूर्ण हैं जहाँ कवि ने मुक्त कंठ से स्वदेश का यशगान किया है—

'जय जय भारत वर्ष हमारे
जय जय हिन्द हमारे हिन्द।'

और कुछ गीत भक्ति-परक हैं। महात्मा गांधी के मत से प्रभावित होकर भी कवि ने गीत रचना की है।

—शांतिप्रिय द्विवेदी आदि—

श्री इलाचन्द्र जोशी और शांतिप्रिय द्विवेदी ने भी किसी समय

गीत लिखे थे, यद्यपि आज इनका पथ भिन्न हो गया है। द्विवेदी जी की हिमानी में कवित्व वर्तमान है—

'सूने दिगंत में बार बार
मैं रह रह कुछ उठता पुकार
निज व्यथित हृदय का व्यथा भार
रे किसके उर में दूँ उतार'

इन पंक्तियों के पढ़ते ही 'पन्त' जी की याद आ जाती है—

'आह किसके उर में उतारूँ अपने उर का भार।'

—उदयशंकर भट्ट—

श्री उदयशंकर भट्ट वर्तमान युग के प्रतिष्ठित गीत लेखक हैं। इन्होंने गीतों के साथ ही गीत नाट्यों की रचना की है जो हिन्दी के लिए अपूर्व हैं। 'अमृत और विष' 'युगदीप' 'यथार्थ और कल्पना' इनके काव्य-संग्रह हैं।

'युगदीप' का कवि मानव-जीवन पर युद्ध का व्यापक प्रभाव देख सका है। वह मनुष्य को उत्साहित करता है, चतुर्दिक व्याप्त अंधकार को चीरकर आगे बढ़ने का आदेश देता है। मनुष्य जीवन का एक प्रयोजन है, इसका भी अपना दर्शन है, इसे कवि ने भली भाँति समझा है और कल्पना तथा मधुर अनुभूतियों के आधार पर मानव को मनुष्यता से युक्त रहने तथा दानवता से दूर भागने की राय दी है।

'यथार्थ और कल्पना' का कवि उत्कट आत्मबल से पूर्ण प्रतीत होता है। उसका साहस स्तुत्य है—

जगत की सुबह से चला चल पड़ा मैं
अड़ी चोटियों पर न पीछे मुड़ा मैं
न मैं रुक सका बादलों की घटा में
भटकता रहा पर न पीछे हटा मैं

जहाँ एक नर पाँति होगी धरा पर
जहाँ संघ में प्राण अनुरक्ति होगी
वहाँ प्रेम होगा वहीं शक्ति होगी
वहाँ प्रेम होगा मनुज के हृदय में
किसी दिन कभी तो पहुँच जायँगे ही
प्रलय के तिमिर में न तूफान में ही
कदम ये रुके हैं न रुक पायँगे ही ॥

आज की अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं से क्षुब्ध होते हुए भी कवि नाश नहीं चाहता, निर्माण चाहता है। वह सर्व-हित की कामना करता है।

इनके गीतों में स्वभाविक प्रवाह है। भाषा यद्यपि उर्दू शब्दों से युक्त रहती है फिर भी भावों की मनोहर अभिव्यक्ति सदैव लक्षित होती है।

—सोहनलाल द्विवेदी—

आपने बालोपयोगी तथा साहित्यिक गीतों की रचना की है और दोनों में एक सी सरलता विद्यमान है। 'भैरवी', 'झरना', 'वासंती' इनके काव्य-संग्रह हैं।

'झरना' बालोपयोगी संग्रह है जिसमें देशभक्ति और प्रकृति संबंधी कविताओं की प्रधानता है। कवि ने इन गेय कविताओं में कहीं कहीं एक ही पंक्ति को अनेक स्थानों में रख दिया है। इससे वांछित सरलता अनायास ही आ गई है—

नीचा हो चाहे हो ऊपर
सब पर जल बरसाता बादल !
खेत रहे चाहे हो ऊसर
सब पर जल बरसाता बादल ॥

मातृभूमि-वंदना के लिए लिखे गये अनेक पद संगीतपूर्ण तथा मधुर हैं—

जय जय स्वदेश
जय जय स्वदेश
शिर पर शोभित सुन्दर गिरीश
सागर पद पर धर रहा शीश
मन मुग्ध कर रहा रम्य वेश
जय जय स्वदेश
जय जय स्वदेश

'भैरवी' में कवि ने अनेक अभियान गीतों की रचना की है जिनमें पुनरुक्तियों की प्रधानता है। एक ही पद में किसी शब्द का दुबारा प्रयोग कर देने से, किसी पंक्ति की पुनरावृत्ति कर देने से या किसी पंक्ति को थोड़े परिवर्तन के साथ दुहरा कर लिख देने से गीत प्रभावशाली बन गये हैं और उनमें निश्चय ही विशेष बल आ गया है। इन गीतों में देशप्रेम की प्रधानता है।

'वासंती' में प्रकृति का वैभव प्रचुर मात्रा में वर्तमान है, साथ ही कवि का उल्लास भी। कुछ गीत प्रेम विषयक भी हैं। द्विवेदी जी के गीत प्रसाद गुण पूर्ण तथा सुबोध हैं।

—सुधाकर—

श्री जयशंकर प्रसाद के आँसू का उन दिनों कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि कितने ही कवियों ने उसी शैली में विरह काव्य रचने की चेष्टा की। स्वर्गीय श्री सुधाकर जी का 'शतदल' इसी ढंग की रचना है। सुधाकर जी मिर्जापुर जिले के अन्तर्गत अहरौरा नामक कस्बे के रहने वाले थे। आपने 'रामाश्वमेध' नाम से एक महाकाव्य भी लिखा है जिसकी शैली,

भाषा और छंद सभी प्रिय-प्रवास जैसे हैं। आपकी रची हुई अनेक मुक्तक कवितायें इस प्रदेश के कितने ही साहित्यिकों को कंठ हैं। क्या गीति काव्य, क्या मुक्तक और क्या महाकाव्य सभी क्षेत्रों में आपकी प्रतिभा उत्कृष्ट रही है। अभी इनकी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हो सकी है। देखें हिन्दी प्रेमियों को यह निधि कब प्राप्त होती है।

जैसा कहा जा चुका है 'शतदल' गीति-काव्य है और इसमें विरह की अनेक दशाओं का वर्णन किया गया है। दर्शन-अभिलाषा से लेकर मूर्च्छा पर्यन्त प्रेमी की सभी अवस्थाएँ उचित रूप से चित्रित हैं।

इन छन्दों में भौतिक प्रेम और ईश्वरीय प्रेम दोनों की अपूर्व झलक मिलती है। अनेक रहस्यवादी कवियों की भाँति सुधाकर जी ने भी नक्षत्र इन्दु, दिनमणि को उस परम प्रिय के नखों के समान माना है। पूरा काव्य पढ़ने के उपरांत ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का लौकिक प्रेम ही भावना की प्रगाढ़ता के फलस्वरूप कहीं कहीं अलौकिक बन गया है।

'शतदल' का प्रणयन छायावाद काल में हुआ था; अतः उन दिनों की अनेक प्रवृत्तियाँ यहाँ परिलक्षित होती हैं। कवि स्वच्छन्दता के साथ प्रकृति में विहार करता है और अपने मन की पुष्टि के लिये प्राकृतिक प्रमाण प्रस्तुत करता है—

'संसार निछावर होता है अपने जीवन धन पर
मिट जाती तरल तरंगें पुलिनों के प्रति चुम्बन पर
क्यों अम्बर अंक विलासी श्यामल घन उन्नत चेता
उमगती घटा में अपना अस्तित्व लीन कर देता।'

कवि ने प्रकृति का बड़ी रुचि के साथ वर्णन किया है। चन्द्रमा, तारे, बादल, और आकाश सभी उसे मनोज्ञ प्रतीत हुये हैं और सर्वत्र उसने अपने समान भावों को देखा है। तारों से भरा हुआ सायंकाल का अंतरिक्ष उसे विरही के व्यथामय हृदय जैसा प्रतीत होता है; उसे

सोम और सविता में प्रणय व्यापार लक्षित होता है तथा घन और चपला की क्रीड़ा आकर्षक प्रतीत होती है।

'सुधाकर' जी के छन्दों में निराशावाद के भी अनेक लक्षण वर्तमान हैं और उन्हें पीड़ा से मोह हो गया है। कवि को सौन्दर्य का मूल्य ज्ञात है; अतः वह उसके नाश की कल्पना से काँप उठता है। आँसू उसके चिर सहचर हैं; अतएव उन्हें वह अमूल्य मानता है—

कौशल से मधुर व्यथा में
ढल ढल यह बूँद बनी है।
प्रत्येक बूँद में सज्जित
स्मृतियों की प्रदर्शनी है॥
उन एक एक स्मृतियों से
प्राणों की सी ममता है।
आँसू का मूल्य लगा दे
किसमें इतनी क्षमता है।

'शतदल' के अनेक चित्र अत्यन्त आकर्षक हैं—

पल पल पर अन्तस्तल में
उठती हैं विविध व्यथायें
अम्बर से भर जाती हैं
श्रावण की सघन घटायें
उसमें प्रिय झूला करते
कोमल स्मृति की कड़ियों में
विकसित गुलाब हिलता है
ज्यों श्यामल पंखड़ियों में॥

इस रचना की एक और विशेषता है। इसके भाव स्पष्ट और स्वा-

भाविक हैं। उनमें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं लक्षित होता और न तो भाषा को ही सजाने की चेष्टा की गई है। खड़ी बोली के शब्दों में यत्र तत्र उर्दू के शब्द मिल गये हैं, जिनसे भाषा निर्बल नहीं होती। छन्द आँसू के ही हैं।

—सुमन—

शिवमंगलसिंह सुमन जी के गीत विद्रोह और सौन्दर्य की भावना से युक्त हैं। जहाँ कवि एक ओर प्रगतिवादी दृष्टिकोण रखता है, वहीं अन्य गीतों के देखने से उसकी शृङ्गार-लिप्सा भी प्रकट होती है। 'हिल्लोल', 'जीवन के गान' और 'प्रलय सृजन' कवि के गीतों के सुन्दर संग्रह हैं। 'हिल्लोल' प्रारम्भिक रचनाओं की पुस्तक है। इसके गीत यद्यपि पूर्ण प्रौढ़ नहीं हैं, फिर भी इनमें विकास के लक्षण वर्तमान है।

'जीवन के गान' में कलाकार को जीवन की वास्तविकता का बोध होता है और वह दृढ़ता के साथ बोल उठता है—

क्या हार में क्या जीत में
किंचित नहीं भयभीत मैं
संघर्ष पथ पर जो मिले यह भी सही वह भी सही
वरदान माँगूंगा नहीं।

उसने प्रगतिवाद की भावना से पूर्ण हो 'मजदूर किसानो बढ़े चलो' का आदेश दिया है और क्रांति की माँग की है—

जब सब बन्धन कट जायेंगे
परवशता की होली होगी
अनुराग अबीर बखेर रही
माँ बहनों की झोली होगी
तब समझूँगा आया वसन्त।

प्रलय सृजन' में कवि कहीं रूस के विषय में लिखता है— चली

जा रही है बढ़ी लाल सेना' और कहीं स्वदेश के विषय में भी। ऐसे कवि जो भारतवर्ष में रहते हुये भी अन्य देशो के आकर्षण से उनके गुणगायक हो जायँ और स्वदेश को भूल बैठें हमारे किस काम के ? पर 'सुमन' जी ने मातृभूमि को सर्वदा याद किया है। वे कलकत्ते के अकाल से कितने दुखी हैं! उनका व्यक्तित्व विद्रोह और सौन्दर्य-प्रेम से युक्त है। इनके अनेक गीतों में प्रकृति के उत्तम चित्र हैं साथ ही मानव अनुभूतियों का मनोहर योग भी विद्यमान है।

आज रात भर बरसे बादल।
साँझ हुई नभ के कोने में
कारे मेघा छाये,
ये बिरहिन के ताप काम के शाप
गरज इतराये;
दीप छिपाये चली समेटे निशा दिशा का आँचल
अमराई अकुलाई सिहरी नीम
हँस पड़े चल दल,
मुखरित मूक अटारी
शापित यक्ष हो उठे चंचल;
गमके मंद् मृदंग बज उठी रिमझिम रिमझिम पायल।
खिड़की से झीनी झीनी
बौछार बिखरती आई,
अनायास ही किसी निठुर की
याद दृगों में छाई;
पानी बरसा कहीं किसी की बहा आँख का काजल।

इनकी भाषा 'बच्चन' जी की भाषा की भाँति एक साथ ही सरल और शक्ति-सम्पन्न है।

—मानव—

श्री विश्वम्भर 'मानव' की कविताओं का प्रथम संग्रह 'शेफाली' नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें अनेक प्रकार के छन्द हैं और अनेक विषयों की कवितायें।

'अंधकूप' में कवि ने प्रेम की मार्मिक विवेचना की है—

'नहीं प्रेम की जाति वंश से उसका रहा न नाता,
वैभवशाली औ दरिद्र का अंतर उसे न भाता;
वह निष्ठुर है खेल खेलता मन के बना खिलौने,
इतना अंधा है इस उसको, इस उससे टकराता।
अमृत दिखला आँखों में भर जाता खारा पानी॥'

और 'मन' शीर्षक रचना में मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है—

मानव का मन इतना संकीर्ण बनाया क्यों?
यह भारी सुख को सह न सके
यह भारी दुख को सह न सके
सुख में चंचल हो जाता है
पीड़ा में नीर बहाता है
हल्का सा सुख
हल्का सा दुख
इसके प्रवाह के दो अनुकूल किनारे हैं।
मानव का मन इतना संकीर्ण बनाया क्यों?

'शेफाली' के कितने ही विचार-प्रधान गीत प्रकृति की रम्य छवि से अलंकृत हैं। कवि के विचारों की स्पष्टता सर्वत्र सराहनीय है। उसकी अनुभूति लोक-अनुभूति से मेल खाती है और उसके विचारों में सत्य का प्राधान्य है।

'अवसाद' कवि की दूसरी रचना है जिसमें ५१ गीत संगृहीत हैं। गीतों का विषय प्रेम है और अधिकांश गीत विरह से ओतप्रोत हैं।

आज का प्रेम निम्न स्तर का हो गया है। गंभीरता का स्थान मुखरता ने ले लिया है; अतएव प्रदर्शन की प्रधानता हो गई है। किन्तु मानव जी ने 'शेफाली' तथा 'अवसाद' में प्रेम का जो महान आदर्श रखा है वह स्तुत्य है। आज के अनेक कवि प्रेम की प्रबलता के समक्ष मर्यादा को टिकने ही नहीं देते और उर्दू के शायरों को भाँति उसके दुखात्मक पक्ष को लेकर व्यर्थ का हाहाकार मचाते हैं। मर्यादा और गम्भीरता का महत्व वे भूल जाते हैं। 'मानव' जी ने मर्यादा से रक्षित प्रेम और कर्तव्य को एक साथ रखा है, यहाँ तक कि व्यथा के प्रदर्शन को भी अनुचित माना है।

वाह्य प्रकृति में कवि की प्रवृत्ति पूर्णतः रमी है और उसने प्रकृति की अनुकूल भूमिका में मानवीय भावो का मनोज्ञ चित्रण किया है। उसके लिये प्रकृति सजीव है और वह भी मनुष्यों की ही भाँति सुखी और दुखी होती है। कहीं कहीं तो प्रकृति और मानव दोनों के भावों का एकाकार हो जाता है। किसी-किसी गीत में तो प्राकृतिक व्यापारों को ही चित्रित कर मानवीय प्रेम की ओर संकेत कर दिया गया है जो अत्यन्त मधुर बन पड़ा है।

'मानव' जी की वर्णन-शैली उच्च कोटि की है। इनके गीतों में स्थूल वस्तुओं तथा सूक्ष्म मनोविकारों दोनों के ही सफल चित्र वर्तमान हैं। प्रेयसी के स्वरूप वर्णन में कवि ने लिखा है—

> 'हों यथा साकार नीलम की किरण झिलमिल सचिक्कण
> बाहु पर बिखरे हुए वे गुल्फ-चुम्बित केश के घन
> श्वेत सारी पर शरद में या अमा के बाण।'

ऐसे ही अनेक आकर्षक चित्र गीतों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

भाव गांभीर्य के साथ कवि का कला पर भी पूर्ण अधिकार है। उसने मानवीकरण, विरोधाभास, उपमा आदि का उचित प्रयोग किया है। कहीं कहीं तो एक ही छन्द में अनेक अलंकार आ गये हैं। कवि को संगीत का मनोहर बोध है; अतएव गीतों में भिन्न-भिन्न प्रकार की संगीत-साधना उपस्थित है। कहीं लम्बी पंक्तियों का संगीत है और कहीं छोटी पंक्तियों का और दोनों ही सशक्त हैं।

इनके गीतों की भाषा पूर्ण समर्थ है। शब्दों का चयन कवि की परिष्कृत रुचि का सूचक है। स्थान-स्थान पर उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। माधुर्य के लिये कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हो गये हैं जो सिनेमा जगत में अधिक प्रचलित है जैसे 'पंछी'। एकाध प्रादेशिक शब्द भी कहीं कहीं आ गया है जैसे 'देखने' के अर्थ में 'ताकना'।

साहित्य प्रेमियों को इन से बहुत आशाये हैं।

—अंचल—

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' वर्तमान काल के उत्तम गीत लेखक हैं। इनकी 'मधूलिका,' 'अपराजिता,' 'किरणवेला,' 'करील,' और 'लाल-चूनर' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पहली दो पुस्तकें शृङ्गार-प्रधान हैं, 'किरणवेला' में प्रगतिवाद का भीषण जोर है और शेष दो स्वस्थ संग्रह हैं।

'मधूलिका' और 'अपराजिता' के कवि की मनोवृत्ति अस्थिर है। इनमें रचनात्मक प्रौढ़ता नहीं लक्षित होती। गीत प्रयोग-कालीन हैं और वासना का प्राधान्य है।

'किरण वेला' में कवि को अपना मार्ग मिल गया है। उसने प्रगति वाद को सहर्ष अंगीकार किया है; अतएव इस पुस्तक में जीवन और संघर्ष के बोझ से टूटे, युद्ध से निचुड़े मानव के जय गीत अधिक मिलते

हैं। 'रोमांस' को कवि ने 'क्षयी रोमांस' की संज्ञा दी है और पूंजीवाद का पूर्ण विरोध किया है :—

'मानव को पशु चिर मूक बना तुम दानव बन शोषण करते,
तुम जो श्रेणी के भेद बढ़ा जनता को चूस उदर भरते।'

वह क्रांति चाहता है, ऐसी क्रान्ति जो सर्वव्यापी हो; क्योंकि उसे वर्तमान व्यवस्था से पूर्ण क्षोभ है।

कवि पूर्ण नाश का इच्छुक है। यह क्रान्ति भीषण आँधी के समान है और रूढ़ियों को समूल उखाड़ फेंके इस आवेग के चक्कर में पड़ा कवि सृजन को एकदम भूल जाता है। उसे भविष्य का भी कोई मोह नहीं रह जाता—

'आज सृजन की कैसी चिंता
महा प्रलय विध्वंस मचाओ।
कौन तुम्हें अनहोनी कहता
महामरण के दीप जलाओ।'

'हवेली' 'झरना' 'मजदूर की अंधी लड़की' आदि प्रगतिशील रचनायें हैं और जमींदार तथा किसान को लेकर भी बहुत कुछ लिखा गया है।

'किरण वेला' में पुरुष और स्त्री दोनों के बड़े ही ग्लानि-जनक चित्र मिलते हैं जैसे—

'मानव घिनौना और भूखा
फीकी लाश की तरह।'

और स्त्री—

'अधनंगी खड़ी और अर्ध-चेतन
खोले ठंड से सूजे नीले-नीले मोटे स्तन
टाँगें एक कम्पित सजीव हड्डियों का ढाँचा।

प्रगतिवादी रचनाओं के साथ ही साथ 'किरणवेला' के नारी विषयक गीत कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इनसे कवि की रति-भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'अंचल' की नारी प्रबल वासना से पूर्ण है। वह अपने प्रिय को एक बार पा जाने पर भविष्य के निमित्त कुछ भी नहीं छोड़ना चाहती। उसकी अतृप्ति इतनी प्रबल है—

कल ! कल की कल से है
पर मैं आज न जाने दूँगी।
व्याप रही कैसी मादकता
आज तुम्हें हर लूँगी॥

ऐसे ही अनेक और वासनामय चित्र हैं।

वासनामयी नारियों के साथ ही कवि ने शोषिता नारियों का भी चित्रण किया है। 'मज़दूर की अंधी लड़की' इसका उदाहरण है—

वह मज़दूर की अंधी लड़की
कुम्हलाती बुझते चिराग सी टिमटिम करती
देख न पाती कच्ची धूप—
रोशनी उजली—
फूली फूली रातें—

कुछ ऐसे चित्र अधिक अश्लील हो गये हैं—

पल भर संघर्षण के सुख में
जो ज्वाला गिरि भर लेती।
जो दो पैसों के लालच में
अपना सब खोले देती॥

ऐसी पंक्तियों में विकृति वासना वर्तमान है। कुछ गीत स्वाभाविक भावनामय हैं जिनमें किसी प्रकार का प्रयास नहीं लक्षित होता—यद्यपि ऐसी शृङ्गारी कविताओं में कवि ने अपनी वास्तविक प्रवृत्ति का भूलना

भटकना देखा है और प्रगतिशील रचनाओं को ही अधिक स्वाभाविक माना है; फिर भी इन्हें देखने से बात उल्टी ही मालूम होती है। ऐसी रचनायें विशेष स्वाभाविक हैं :—

क्या तुम मुझको याद करोगी ?
जब संगीत भरी लतिकाये वृक्ष तरंगित होंगे प्रति क्षण
मेरे दर्द भरे नयनों को होठों पर लाकर कुछ उन्मन
क्या सुगंधि सी आतुर हो वन वन में ढूँढ़ चलोगी मुझको
मेघ गगन से गिरते गिरते क्या तुम मुझको याद करोगी ?

'अंचल' विद्रोह का कवि है। 'करील' तक विद्रोह का रूप अधिक बौद्धिक रहा है; पर 'लाल-चूनर' में महान् परिवर्तन हो गया है। 'करील' की नारी की अनेक विशेषताएँ हैं; फिर भी कवि सौन्दर्य से तुष्ट न होकर उसे क्रांति के लिए आमंत्रित करता है और रात की उस 'गीली रंगीली' को 'अखंड युद्ध की करालिका' बना देता है। 'लाल चूनर' में आधी कविताएं नारी विषयक हैं। नारी रूप अधिक मोहक होता ही है; अतएव कवि इच्छा करता है—

आँखों की सुर्मई गुलाबी
चितवन में खो जाता;
मेरा वश चलता मैं
बन जाता सौन्दर्य तुम्हारा।

वह नारी में नवीनता की अपेक्षा करता है, क्योंकि उसे ऐसी नारी चाहिए जो वासनामयी हो, साथ ही साथ क्रांतिमयी भी।

—गिरिजाकुमार—

श्री गिरिजाकुमार माथुर के 'मंदार' 'नाश और निर्माण' काव्य संग्रह हैं। इनकी कविताओं में वातावरण का उत्तम चित्रण किया गया है और वे प्रकृति की रुचिर भूमिका में प्रतिष्ठित की गई हैं। निर्माण

खण्ड की अनेक रचनायें उत्साह पूर्ण हैं। कहीं-कहीं विनाश की बात भी कही गई है। इधर गिरिजाकुमार माथुर के नाम से कुछ गीत संगम में निकले हैं जिनमें संगीत है, सरलता है, शब्द भी मधुर हैं; किन्तु यह सरलता और संगीत-मोह साहित्यिक गीतो को कहीं चित्रपट के गानों के रूप में परिणत न कर दे, यह भय उत्पन्न होने लगता है। सिनेमा जगत के अनेक प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया गया है

लहरों पै लहर उठे
चंदन बयार बहे
चले जल जमुना में चंदा सी नाव रे
लहरों पै लहर उठे।

संगम १२ दिसम्बर १९४८

—उपेन्द्रनाथ अश्क—

इस युग के कलाकारों के लिये गीतों का कुछ ऐसा बलवान आकर्षण था कि उपन्यास कहानी लेखक भी इससे न बच सके। श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आज के प्रसिद्ध कथाकार हैं और इन्होंने गीत रचना भी की है। 'उर्मियाँ' इनकी गीत पुस्तक है।

इन गीतों में स्वानुभूति को प्रधानता दी गई है जो अच्छे गीतों का सर्वोत्कृष्ट गुण है। ये गीत जीवन के समीप हैं और कवि की रुचि को सौन्दर्य के साथ अंकित करते हैं। इन गीतों में कुछ रचनायें प्रगतिवाद से भी संबंधित हैं; लेकिन उनमें कटुता का अभाव है; सहानुभूति की प्रधानता है, विद्रोह की नहीं।

अनेक गीतों में उर्दू शब्दों की प्रधानता है—

वे जाम छलकते आँखों में
वे नशे हवाओं में उड़ते।

उल्फत के अम्बर में मन के
खग उड़ते उड़ उड़ कर मुड़ते ॥

'अश्क' जी के गीत सरल हैं और इनमें प्रसाद गुण का बाहुल्य है; साथ ही मनोहर गति भी वर्तमान है।

—देवनाथ पांडेय 'रसाल'—

देवनाथ जी पांडेय 'रसाल' की 'दीपिका' में प्रेम और प्रकृति से संबंधित अनेक गीत संगृहीत हैं। कवि को संयोग और वियोग दोनों का बोध है और प्रकृति के रहस्य लोक में उसकी सूक्ष्म प्रज्ञा का प्रवेश सराहनीय है—

कनक निर्मित तूलिका से रँगा किसने प्रात ?
सरित के तट पर बिछा कर स्वर्ण के कण,
मोतियों से कली की भर मधुर चितवन,
श्वास से किसने किया सुरभित सजनि यह वात ?

इन गीतों में संगीत की विविधता दर्शनीय है। कवि प्रचलित सिनेमा गीत पद्धति से भी प्रभावित हुआ है और अनेक स्थानों पर वैसी ही स्वर-साधना प्रस्तुत की गई है। शायद इसी से उसी प्रकार के कुछ शब्द भी रख दिये गये हैं—

'थाम किरन की डोर
मस्त गगन का राही चंदा
चला अवनि की ओर।'

'रसाल' जी ने कुछ क्रांति-गीत भी लिखे हैं और कुछ बापू-विषयक कवितायें भी।

गीतों में कहीं कहीं शब्दों का ग्रामीण रूप भी पाया जाता है जैसे—थाम, पात, गगरी, डगरी, पंखा आदि। कहीं कहीं यह व्यवस्था माधुर्य

के लिये कर दी गई है। कवि सिनेमा-गीत-लेखक 'प्रदीप' से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है।

—सुभद्राकुमारी चौहान—

देशभक्ति पर गीति रचना करने वाले कलाकारों में सुभद्राकुमारी चौहान का स्थान महत्वपूर्ण है। 'मुकुल' इनकी रचनाओं का संग्रह है जिसमें पारलौकिक प्रेम, लौकिक प्रेम, देशप्रेम आदि से संबंधित अनेक गीत हैं। कवयित्री के व्यक्तित्व की भाँति 'मुकुल' का प्रेममय होना उचित ही है।

आराध्य के समक्ष अपनी अकिंचनता का निवेदन तथा अपने सर्वस्व का उसके लिये उत्सर्ग ही तो भारतीय भक्ति का आधार रहा है; अतः सुभद्रा जी ने अपनी दीनता का बोध कराते हुये देवता के चरणों पर अपने हृदय को चढ़ाने का साहस किया है। उन्होंने भगवान कृष्ण से भारतभूमि में अवतार लेने की प्रार्थना की है जिससे यह देश स्वतंत्र हो सके।

प्रणय संबंधी गीतों में संयोग और वियोग दोनों के ही अनेक चित्र हैं जो अत्यन्त स्पष्ट हैं। कवयित्री ने प्रेम के अनेक आकर्षक व्यापारों का वर्णन करते हुये उसे भूलना असम्भव बताया है। कोई कितना भूल सकेगा?

भूलो प्रेम प्रतिज्ञाओं को
आशाओं विश्वासों को।
भूलो अगर भूल सकते हो
आँसू और उसासों को।

वियोग का कष्ट उन्हें असहनीय हो उठता है और वे शिशिर समीर को दूत बना प्रियतम के पास भेजना चाहती हैं। उससे निवेदन करती हैं—

कहना किसी तरह वे सोचें
मिलने की तद्‌बीर सखी।
सही नहीं जाती अब मुझसे
यह वियोग की पीर सखी॥

उनको प्रेम की प्रबलता अच्छी तरह ज्ञात है। प्रिय के सुख दुःख में अपने सुख दुःख को मिला देना, उसकी रुचि के अनुसार आचरण करना और उसमें तल्लीन हो जाने की कामना इनके लौकिक प्रेम की कुछ विशेषतायें है।

'मुकुल' के वात्सल्य गीत इनकी छोटी पुत्री से संबंधित हैं जिनमें मातृसुलभ कोमलता तथा अपत्य प्रेम दर्शनीय हैं। दाम्पत्य जीवन में ऐसे चित्रों की निराली ही छटा होती है जहाँ माँ बाप के हृदय का प्यार बच्चों के लिये उमड़ता हुआ दिखाई देता है।

इनके अनेक ओजमय गीतों में देश सेवा की उत्कट अभिलाषा बिखरी पड़ी है। 'राखी', 'विजयादशमी', 'विदा', 'जलियाँवाला बाग' और 'झाँसी की रानी' ऐसी ही कवितायें हैं। 'झाँसी वाली रानी' के साथ ही कवयित्री को अपूर्व सर्वप्रियता प्राप्त हुई है। यह रचना युग के अनुकूल थी; अतएव इसे पाकर देशभक्त युवक समाज आनन्द विभोर हो उठा। जिसे देखिये वही लक्ष्मी बाई के युद्ध कौशल की प्रशस्ति करता फिरता था। अतीत सबको प्रिय होता है और यदि वह गौरवमय रहा हो तो कहना ही क्या! अतः स्वतन्त्रता की पुजारिन 'झाँसी की रानी' सर्वप्रिय हो गई।

मातृभूमि की मुक्ति के लिये वे युद्ध भूमि में उतरने तक को तैयार हैं—

सबल पुरुष यदि भीरु बनें
तो हमको दें वरदान सखी।

अबलायें उठ पड़ें देश में
करें युद्ध घमसान सखी ।।

देश को बंधन मुक्त करने के निमित्त ऐसी विह्वलता थोड़े कवियों में मिल पाती है। मातृभाषा हिन्दी से संबंधित कुछ गीत भी इस रचना में संगृहीत हैं।

सुभद्रा जी का काव्य हृदय की सरलता और भावों के स्वाभाविक स्वरूप से मंडित है। इनकी कविताओं में इनका जीवन अपने सत्य रूप में प्रतिफलित होता है। काव्य और जीवन की यह एकता सर्वत्र नहीं मिल पाती और पूर्णतः स्तुत्य है। कृत्रिमता विहीन सीधी सादी अभिव्यक्ति के सहारे ये भाव पाठक को मुग्ध कर लेते हैं। इनकी भाषा सशक्त है और उसमें उर्दू के भी शब्द मिले हैं—

'गुलाम खानों में राष्ट्रीयता आबाद हुई।
मादरे-हिन्द यों बोली कि मैं आज़ाद हुई ।।

भिन्न भिन्न प्रकार के छन्दों में विभिन्न प्रकार का संगीत वर्तमान है। इनकी असामयिक मृत्यु से हिन्दी की बड़ी क्षति हुई है।

—सुमित्राकुमारी सिनहा—

'विहाग' सुमित्राकुमारी सिनहा की पहली गीति रचना है। इसमें उनका अतीत के प्रति मोह और वर्तमान के प्रति विद्रोह वर्तमान है। अनेक गीति मानव-जीवन से सम्बन्धित हैं जिनमें सुख और यौवन की नश्वरता की ओर संकेत किया गया है। इनको जीवन का कटु अनुभव हुआ है और विवशतायें अधिक दुखदायिनी सिद्ध हुई हैं। इन गीतों में करुणा का स्वर अधिक स्पष्ट है।

विहाग में प्रेम के दो स्वरूप लक्षित होते हैं, लौकिक तथा पारलौकिक। जहाँ प्रकृति में तथा रोम रोम में प्रिय के दर्शन होते हैं वहाँ प्रेम

की अलौकिक छवि वर्तमान है और शेष स्थलों पर मानवीय प्रेम की चर्चा की गई है। स्वप्न मिलन के अनेक सुन्दर चित्र भी अंकित हैं। कुछ गीतों से प्रेम की गहराई का भी पता चलता है।

सिनहा जी ने प्रकृति का चित्रण दो रूपों में किया है—आलंबन के रूप में तथा उद्दीपन के रूप में। उन्होंने प्रकृति को भी अपने समान ही पीड़ा से युक्त देखा है और अपने विचारों की पुष्टि के लिये प्राकृतिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने मुक्ति से बन्धन को किस प्रकार स्वीकार किया इसका एक रम्य चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में वर्तमान है—

स्वप्न उपवन में चहक कर
पींजरे में जा बहक कर
जग भला क्या जान सकता मूल्य मैंने क्या दिया है।

प्रेम के प्रसंग में इन्होंने व्रण, छाले, अंगों की जलन तथा रक्त का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है जो रस की दृष्टि से सुरुचि का द्योतक नहीं है। माधुर्य की लालसा से ही इन्होंने 'हिय' 'सपन' 'गगरी' आदि का भी प्रयोग किया है। फिर भी गीतों का माधुर्य और छन्दों की विभिन्नता सर्वत्र सुलभ है।

'आशापर्व' में कवयित्री का दृष्टिकोण कुछ परिवर्तित हो गया है। जीवन के कटु अनुभवों ने इनके स्वप्नों को तोड़ दिया है और वास्तविकता को समक्ष ला रखा है। इन गीतों में युग चेतना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनमें शोषितों के प्रति सहानुभूति है। कवयित्री के कोमल कवि हृदय से युग धर्म ने टक्कर ली जिसके फलस्वरूप चेतना प्रखर हो गई। वह स्वप्नों से वास्तविकता की ओर अग्रसर हुई और उसने दुखियों और पीड़ितों की आहों को देश के कोने कोने में फैलाने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। वह प्राकृतिक वैभव से भी विमुख हो

गई—उसने सावन के सौन्दर्य से मँह मोड़ लिया और शिथिलता को दूर हटा कर शक्ति का आह्वान किया।

इस रचना के प्रेम विषयक गीतों में भी एक परिवर्तित दृष्टिकोण दिखाई देता है। कवयित्री कर्तव्य के अनुरोध से विरह जन्य कष्ट सहने को तैयार है और वियोग के सम्मुख भी उसकी आशावादिता बनी रह जाती है। वह प्रेम को कर्तव्य मार्ग का रोड़ा नहीं बनाती—

'किंतु तुम्हें तो मंजिल पाना
नव युग का संदेश सुनाना
तुम क्यों प्रत्याशा करते हो कोई अश्रु पोंछ दुलराये।
बोलो क्यों आँसू भर आये॥

एकाध स्थलों पर विरह जन्य करुणा का भी ऐसा शक्तिशाली चित्रण हुआ है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती—

पल भर भी दुलराया होता।
आज न मेरे गीतों का जी दुख से यों भर आया होता॥

प्रकृति संबंधी गीतों में अनेक सुन्दर चित्र वर्तमान हैं और कहीं कहीं संश्लिष्ट चित्रण भी किया गया है।

'आशापर्व' के प्रथमगीत में ही उषा काल का सुन्दर चित्र है—

'छूटे नथन बाण किरणों के कलियों में गुदगुदी भरी है
मधु के सुगंध की लहर समेटे पतली मृदु समीर उतरी है
पंछी के नन्हें कंठों से झरा मुक्त संगीत सलोना।
मेरे भोर साँझ मत होना॥'

यहाँ भोर को हास और संध्या को रुदन का प्रतीक माना है और अनेक स्थलों पर अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान किया गया है। इन गीतों में संगीत के निमित्त शब्दों का अशुद्ध और ग्रामीण रूप भी रख दिया गया है और कुछ रूप परिवर्तित भी कर दिये गये हैं।

'पंथिनी' के गीतों में करुणा और शक्ति दोनों ही विद्यमान हैं। इनमें जहाँ एक ओर अश्रु की बूंदों से लेकर सातों खारे सागर डूबे हुये हैं, वहीं दूसरी ओर ये युग तूणीर के तीर हैं और अग्नि वर्षा करते हैं। इनमें अपरिमेय शक्ति भरी है।

जीवन के कटु अनुभव तथा कठोरता से कवयित्री का ज्ञान बढ़ता गया है और उसने सुख दुःख, जीवन मरण सबको एक साथ ही आपस में लिपटे हुये देखा है। ऐसी दशा में वह तूफानों से खेलने का साहस भी प्राप्त कर लेती है।

प्रेमगीतों में कल्पना की क्षीणता है और प्रेम को एक प्रवंचना के रूप में चित्रित किया गया है। 'विहाग' का प्रेम 'पंथिनी' तक आते आते निर्बल हो गया है; फिर भी कहीं कहीं स्मृति के आधार पर मिलन के सुन्दर चित्र बनाये गये हैं—

दिन फूलों से भी थे हलके
निशि में अमृत के घट छलके
इस मृगतृष्णा में भी तो नव चेतनता का ही सागर था।
सपना ही था पर सुन्दर था॥

'पंथिनी' का चित्रण भी उच्च कोटि का है। यहाँ पावस, शरद, पूर्णिमा और वसंत सभी वर्तमान हैं और कवयित्री ने इनमें अपने जैसे भावों का आरोप किया है। कहीं कहीं इनके भाव प्रकृति से मेल नहीं खाते।

पुस्तक के अंत में गांधी जी के महाप्रयाण से संबंधित तीन गीत हैं। 'पंथिनी' पहले की रचनाओं से अधिक गंभीर हैं और इसकी शब्द योजना तथा संगीत साधना भी अधिक मधुर हो गई है। सुमित्राकुमारी जी ने आधुनिक गीतिकारों में एक अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है।

—तारा पांडे—

'स्वप्न से सुन्दर सुरीले
आँसुओं से आज गीले
क्यों न भायेंगे जगत को हृदय के ये गीत मेरे।'

तारा पांडे के गीत सचमुच संगीतमय और करुण हैं; इनमे कवयित्री ने मानव-जीवन, प्रेम, भक्ति, समाज-सेवा तथा प्रकृति पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।

मानव जीवन नश्वर है और जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है, ऐसा इनका विश्वास है; अतएव इनके गीतों में निराशा और आशा से युक्त दो प्रकार के दृष्टिकोण लक्षित होते हैं। एक ओर क्षणभंगुरता-जन्य निराशा है और दूसरी ओर महामिलन-विषयक उत्साह।

इन्होंने अर्थ को गौण स्थान दिया है और आध्यात्मिक लाभ को प्रधान मानकर अमर जीवन की कामना की है; किन्तु यह नहीं समझ सकी हैं कि यह अमरता ज्ञान से प्राप्त हो सकती है या प्रेम से। इनके अनेक गीत जीवन के कटु अनुभव के द्योतक हैं।

वर्तमान युग के आन्दोलनों से भी श्रीमती पांडे प्रभावित हैं; अतः इनके गीतों में समाज सेवा का स्वर भी सुनाई पड़ता है—

'दुर्बल हैं जो उन्हें उठाओ
पतितों को भी राह लगाओ'

इनके प्रेम सम्बन्धी गीत अत्यधिक मधुर हैं जिनमें कहीं प्रेम की चेष्टा की गई है और कहीं आँसुओं का महत्त्व बतलाया गया है। इन सभी गीतों में पीड़ा का बाहुल्य है।

कवयित्री ने प्रकृति को मानवीय भावों से ओतप्रोत देखा है।

उनका प्रकृति-प्रेम सराहनीय है। वे फूलों, तितलियों, और चिड़ियों के बीच रहना चाहती हैं। इन्होंने प्रकृति में पीड़ा को भी पाया है—

'अगणित दीप जले अम्बर में
अग्नि दहकती सागर उर में
जलता दीपक में पतंग भी
मुझको जलना भाया
मैंने दुख अपनाया।'

प्रकृति के कितने ही सुन्दर शब्द चित्र इनके गीतों में वर्तमान हैं—

'संध्या फैलाती अलकें
बिछती फूलों की पलकें
तारों के दीपक झलकें
क्या इनको समझ सकोगी।'

इनके गीतों के भाव सरल तथा स्पष्ट हैं और इनमें विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं उर्दू के शब्द भी आ गये हैं। सरलता और मार्मिकता का ऐसा संयोग कठिनाई से पाया जाता है!

—शांति एम० ए०—

शांति एम० ए० के गीतों पर देशप्रेम, क्रांति, जन-सेवा, वेदनावाद सभी का प्रभाव लक्षित होता है। आधुनिक काल की इन प्रबल विचार धाराओं से इनका प्रभावित होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि सत् काव्य युग चेतना से दूर नहीं रह सकता। कवयित्री को जीवन की वास्तविकता का बोध है और कर्मशीलता से अभिरुचि—

'यह कर्तव्यों की दुनियाँ
भावों का कारागार नहीं।'

गीतों में अनुभूतियों की प्रधानता है—

'यह मेरे कल्पित गीत नहीं
इनमें मेरा इतिहास छिपा।'

मातृभूमि के प्रति इनको अपार प्रेम है और उसे स्वतन्त्र कर देना चाहती हैं। इनके क्रांति गीतों में जल और अग्नि की अपार शक्तियाँ निहित हैं। माँगने से कभी आज़ादी नहीं मिलती, वह रक्त तर्पण से मिलती है ऐसा इनका दृढ़ विश्वास है; अतएव इन्होंने बार बार उन प्राचीन भारतीय गौरव पूर्ण स्थानों को याद किया है जहाँ स्वातन्त्र्य-रक्षा के हेतु अनेक युवकों ने प्राणोत्सर्ग कर दिया—

'कर रहे प्रतीक्षा आज पुनः हल्दीघाटी के मौन चरण,
जौहर की उन आहुतियों के हैं अभी अधूरे ही प्रकरण।'

शस्यश्यामल बंगाल में भी कितने प्राणी अकाल से मर गये। यह बहुत दिनों की बात नहीं है; कवयित्री पर इसका भी प्रभाव पड़ा है और उसने एक गीत में 'जय बंग भूमि बंगाल तुम्हारी जय हो' लिखकर अपनी समवेदना प्रकट की है। उसे जनसेवा का महत्व ज्ञात है; अतएव वह प्रार्थना करती है—

'जग से आकर्षण दो न मुझे
मानव से किन्तु विरक्ति न दो।
माँ इतनी मुझको शक्ति न दो॥'

मानव जीवन में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है। शांति एम० ए० के गीत प्रेम के अनेक स्वरूपों से संबंधित हैं। कहीं वियोग जन्य वेदना से पूर्ण ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं—

"किसी चाह को आह बना कर
मेरे भाव अभाव बने हैं

किसके आँसू काव्य लोक में चमक पड़े बन कर तारे हैं।
मेरे गीत किसे प्यारे हैं ?'

और कहीं निराशा से ओतप्रोत कुछ कड़ियाँ—

'कोकिल गाती पतझार मिले
कवि गाता जग का प्यार मिले
मैं गाती मेरे मरुथल में मृग खेलें कभी वसंत न हो।
मेरे गीतों का अंत न हो ॥'

इनके अनेक गीत समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। इनमें आशा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है यह हर्ष का विषय है। 'निष्कृति' के गीतों की अपेक्षा नवीन गीत अधिक सरल और स्पष्ट हैं। इन गीतों में आज की प्रचलित प्रथा पुनरुक्ति के भी दर्शन हो जाते हैं—

'सुमनों के पथ पर शूलों का होना कोई नया नहीं है
सुमनों के पथ पर भूलों का होना कोई नया नहीं है'

कहीं कहीं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे मुश्किल, रुख़, मंजिल और कई गीतों में कुछ अशुद्ध शब्द भी आ गये हैं जैसे—नर्क आगी, अनेकों।

—रामेश्वरी देवी 'चकोरी'—

रामेश्वरी देवी 'चकोरी' यद्यपि अत्यन्त अल्प अवस्था में ही हमारे बीच से उठ गईं फिर भी उनकी रचनायें भूल जाने के योग्य नहीं हैं। "किंजल्क' और 'मकरन्द' नामक इनके दो संग्रह निकल चुके हैं।

'चकोरी' जी ने कवित्त, सवैया और गीत सब में एक साथ ही रचनायें की हैं तथा प्रेम, देश-प्रेम, समाज सभी को अपना विषय बनाया है। उनके सवैये गीतों से कहीं अधिक सफल हैं पर यह निश्चित है कि

यदि उनका निधन न हो गया होता तो वे आगे चलकर अधिक अच्छे गीत लिखतीं।

इन गीतों में प्रसाद गुण अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है लेखिका ने आत्मानुभूति को ही प्रधानता दी है; प्रकृति चित्रण सजीव है और छायावाद युग की कई अन्य विशेषतायें भी गीतों में वर्तमान है। इनकी 'जिज्ञासा' देखिये—

कितना आकर्षक है क्या है इसका कुछ इतिहास ?
आँखों के मिलते ही बढ़ती क्यों आँखों की प्यास ?
अधर खोजते रहते अस्फुट अधरों की मुस्कान
यौवन हाथ पसार माँगता क्यों यौवन का दान ?

गीति-नाट्य

आधुनिक युग में गीतों के अतिरिक्त गीति-नाट्यों की भी रचना हुई। इनमें गीति-काव्य के कुछ तत्त्व वर्तमान रहते हैं। ये नाटक साधारण नाटकों से भिन्न होते हैं। साधारण नाटकों में गद्य में पात्रों के वार्तालाप तथा क्रिया-कलाप का वर्णन रहता है; पर गीति-नाट्यों में संगीतमय गीतियों में ही वार्तालाप होते हैं। यह एक स्थूल भेद है जिसके आधार पर ऐसे नाटकों को गीति-नाट्य के नाम से पुकारते हैं।

इन नाटकों में एक सीधी-सादी कथा रहती है जिसमें कथानक गत सौन्दर्य नहीं रहता; इनका सौन्दर्य तो पूर्णतः कवि निर्मित होता है। घटनायें भी साधारण ढङ्ग की होती हैं और इनकी संख्या परिमित होती है। ऐसी रचनाओं में कटु व्यापार का सर्वथा वहिष्कार किया जाता है। साधारण नाटकों में कटु व्यापार भी आ सकते हैं जैसे अभियान, मारपीट, दौड़, धूप आदि। गीति नाट्य एक अतीव कोमल रचना है जिसमें जीवन के सूक्ष्म व्यापारों का शब्दों के सहारे मूर्त रूप उपस्थित किया जाता है। यहाँ भावों की अन्विति के दर्शन होते हैं, एवं संकेतमय और स्पष्ट भाव-विलास दृष्टिगोचर होता है।

इन रचनाओं में अभिनय को गतिशील बनाने में कथानक का विशेष योग नहीं रहता; क्योंकि न तो कथानक इतना सुन्दर होता है और न घटनायें इतनी चातुर्य-पूर्ण कि उनसे अभिनय की क्रिया गत्वर

हो सके। भाव स्फूर्ति से ही अभिनय को गति दी जाती है और सौन्दर्य विधान होता है।

ऐसी रचनाओं में शारीरिक व्यापारों की कमी रहती है। अन्य नाटकों में तो शारीरिक व्यापार ही प्रधान होते हैं, मानसिक चिंतन को उतनी प्रधानता नहीं दी जाती; पर गीति नाट्यों में ठीक इसका उलटा होता है। यहाँ मानसिक चिंतन में प्रकृति सहायक सिद्ध होती है। कोई पात्र किसी रमणीय प्रदेश में जाता है, वहाँ पहुँच कर वह कुछ सोचने लगता है, प्रकृति उसे चिंतन की क्रिया से निवृत्त नहीं करती; अतएव ऐसे नाटकों में प्रकृति वर्णन भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

गीति नाट्यों के पात्रों की संख्या कम होती है; पर साधारण नाटकों में बहुत पात्र हो सकते हैं। पात्रों का भाव-संघर्ष चित्रित करना ही इन नाटकों का लक्ष्य होता है, इसलिये इनका कार्य-क्षेत्र वाह्य जगत नहीं, बल्कि अन्तर्जगत है। इन्हें भाव नाट्य भी कहते हैं क्योंकि इनमें क्रिया कलाप वर्णन उतना आवश्यक नहीं होता।

भावनाट्यों में परिस्थिति की विशेषता रहती है। परिस्थिति के कारण ही किसी पात्र के हृदय में भावों का उद्रेक होता है और इन नाटकों में मानसिक उथल पुथल मचाने वाली कोई भावधारा होती है जिसे लेकर सम्पूर्ण नाटक लिखा जाता है।

प्रसाद : करुणालय

सर्वप्रथम स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने गीति-नाट्य लिखना प्रारंभ किया। इनकी इस प्रकार की पहली पुस्तक करुणालय है। यह गीति नाट्य मार्च सन् १९१३ के इन्दु में निकल चुका था और फिर अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। यों तो प्रसाद जी के पहले भी गणवृत्तों में अमित्राक्षर कविता लिखी गई थी; पर मात्रिक वृत्तों में उसका प्रयोग

तथा भावों और वाक्यों की स्वतंत्र गति प्रसाद जी की ही सृष्टि हैं। ऐसे छन्द संस्कृत में कुलक नाम से पहले से ही चले आ रहे हैं। अँग्रेजी का 'ब्लैंकवर्स' और बंगला का अमित्राक्षर छन्द इसी प्रकार का है।

करुणालय में अतुकांत मात्रिक छंद हैं जिनमें वाक्यानुसार विराम चिह्न दिया गया है। पुस्तक के आरंभ की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> सांध्य नीलिमा फैल रही है, प्रांत में
> सरिता के। निर्मल विधु-बिम्ब विकास है,
> जो नभ में धीरे धीरे है चढ़ रहा।
> प्रकृति सजाती आगत-पतिका रूप को।

करुणालय की कथा करुणा से ओतप्रोत है। अयोध्या के महाराज हरिश्चन्द्र समुद्र देव को सुतवलि देने का बचन देते हैं। उनका कुमार रोहित बड़ा हो जाता है फिर भी वे उसकी बलि नहीं दे पाते। इस पर एक दिन क्रुद्ध होकर समुद्र देव उनकी नाव रोक देते हैं। घर आने पर हरिश्चन्द्र बलि की तैयारी करने लगते हैं। इसे सुन कर रोहित भाग जाता है। वह भूख से मरते हूये अजीगर्त मुनि के पुत्र शुनःशेफ को बलि के निमित्त खरीद लाता है। फिर वशिष्ट की अध्यक्षता में बलि की तैयारी होती है। शुनःशेफ अत्यन्त करुण स्वर में भगवान को याद करता है। बधिक तलवार रख देता है और शुनःशेफ की हत्या से विरत होता है। इसी समय अजीगर्त अपने पुत्र की बलि के लिये आगे बढ़ता है। अचानक घोर गर्जन होता है और विश्वामित्र अपने एक सौ पुत्रों के साथ मखशाला में प्रवेश करते हैं। वे वशिष्ट को धिक्कारते हैं और राजा को भी बुरा-भला कहते हैं। इसी समय सुब्रता नाम की राज कुल दासी विश्वामित्र के सामने आकर अपना परिचय देती है। वह दासी विश्वामित्र की गन्धर्व विवाहिता स्त्री है और शुनःशेफ उसी का लड़का है जिसे उसने अजीगर्त के यहाँ छोड़ दिया था और जिसे मुनि

ने बलि के निमित्त, एक सौ गायों के बदले, रोहित के हाथ बेच दिया। इस प्रकार माता, पिता, पुत्र, तीनों मिल जाते हैं, देव प्रसन्न होते हैं और चारों ओर आनन्द फैल जाता है। यहाँ कथा का अन्त होता है।

यद्यपि कथा साधारण सी है, इसकी घटनायें भी चमत्कारपूर्ण नहीं हैं; पर प्रसाद जी ने इसे मनोहर बना दिया है।

स्थान-स्थान पर प्रकृति का रूप दर्शनीय है—

मलयानिल ताड़ित लहरों में प्रेम से
जल में ये शैवाल जाल हैं झूमते।
हरे शालि के खेत पुलिन में रम्य हैं
सुन्दर बने तरंगायित ये सिंधु से
लहराते जब वे मारुत बस झूमते।

रोहित के पिता ने बलि की प्रतिज्ञा की है। इस विकट परिस्थिति में पड़े हुये रोहित के मन में अनेक भाव उठते हैं। वह पिता की आज्ञा का महत्त्व सोचता है, साथ ही अपने प्राणों के मूल्य पर ध्यान देता है। उसके हृदय में भावों का विकट संघर्ष चल रहा है 'मानव जीवन प्राकृतिक आनन्द में विभोर है, वह उससे दूर हो जाय उसका प्रकृति से संबंध टूट जाये', रोहित यह नहीं चाहता। वह कह उठता है :—

अहा स्वच्छ नभ नील, अरुण रवि-रश्मि की
सुन्दर माला पहन, मनोहर रूप में
नव प्रभात का दृश्य सुखद है सामने
उसे बदलना नील तमिस्रा रात्रि से
जिसमें तारा का भी कुछ न प्रकाश है
प्रकृति मनोगत भाव सदृश जो गुप्त, यह
कैसा दुखदायक है? हाँ बस ठीक है।

कहीं-कहीं शिशुओं के हृदय की सरल भावना भी अत्यंत मनोहर रूप में व्यक्त हुई है। अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेफ को पुकारता है। वह आकर इस प्रकार निवेदन करता है—

क्या है बाबा, क्यों हो मुझे बुला रहे
मैंने कोई भी न किया है दोष जो
आप बुलाते मुझे मारने के लिये।

करुणालय के मूल में करुणा का अजस्र स्रोत है जो शुनःशेफ की प्रार्थना में फूट पड़ा है। अजीगर्त यूप से बँधे हुये शुनःशेफ को मारने के लिए बढ़ता है, बालक आकाश की ओर देखकर प्रार्थना करता है—

हे हे करुणा-सिंधु, नियंता विश्व के,
हे प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सर्प के,
हाय प्रभो ! क्या हम इस तेरी सृष्टि के
नहीं, दिखाता जो मुझ पर करुणा नहीं।

सामाजिक कुरीतियों के विरोध में भी बहुत सी बातें कही गई हैं। विश्वामित्र ने बलि की इस प्रथा का विरोध किया है और अजीगर्त को बहुत फटकारा है। इस अजीगर्त के लिये 'मुनि' शब्द अनुपयुक्त है। इसे तो बधिक ही कहना चाहिये।

'करुणालय' में प्रयुक्त छन्द में वर्ण-विन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति दोनों विशेषतायें वर्तमान हैं। प्रसाद जी ने 'अरिल्ल' में कुछ हेर करके एक नये प्रकार के भिन्न तुकांत छन्द को जन्म दिया। इस छन्द में उनकी सर्वप्रथम कविता 'भरत' है। बाद में गीति-नाट्यों के लिये यही छन्द उपयुक्त माना गया और पंडित रूपनारायण पांडेय ने भी 'तारा' गीति-रूपक का इसी छन्द में अनुवाद किया।

गुप्त जी : अनघ

प्रसाद के अनन्तर गीति नाट्य लिखने वालों में मैथिलीशरण जी गुप्त विशेष उल्लेखनीय हैं। 'अनघ' इनका सुन्दर गीति नाट्य है। गुप्त जी ने प्रत्येक प्रचलित परम्परा में कुछ न कुछ लिखा है, यह उनकी विशेषता है। महाकाव्य, खंडकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, पौराणिक काव्य, गीति काव्य, गीति नाट्य सब प्रकार की रचनायें उन्होंने प्रस्तुत की हैं। अनघ करुणालय की भाँति अतुकांत छन्द में नहीं लिखा गया है। इस छन्द में संगीत है, गीत है, इसके साथ ही तुक भी मिलाई गई हैं।

अनघ की कहानी मघ नाम के एक व्यक्ति को लेकर चलती है जिसे गुप्त जी ने भगवान बुद्ध का साधनावतार माना है। मघ कहीं घूम रहा है। उसे एक जन दिखाई दे रहा है। वह मघ को देवता समझकर प्रार्थना करता है और मघ उसके भ्रम का निवारण करता हुआ कर्मपरायण बनने का उपदेश देता है। थोड़ी देर में मघ देखता है कि चार चोरों ने उस व्यक्ति को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया है और वे उसका सब कुछ छीन रहे हैं। वह उन्हें परास्त कर घायल व्यक्ति को उठाकर ले जाता है।

समाज सेवक मघ से मुखिया और शासक असन्तुष्ट हो जाते हैं। उसका घर जला दिया जाता है, गायें चुरा ली जाती हैं और स्वयं उसे भी किसी अभियोग में वे फँसा लेते हैं। वह बन्दीगृह में डाल दिया जाता है। इन सब उत्पातों के पहले ही मघ को एक सुन्दरी का सहयोग प्राप्त हो जाता है जो उसके सेवा कर्म में योग देती है। इसका नाम सुरभि है और यह किसी मालिन की पालिता कन्या है। वह मघ को उसके सद्गुणों के कारण प्रेम करने लगती है। मघ का न्याय करने के

लिये स्वयं रानी न्यायाधीश का आसन ग्रहण करती है। गुप्त चरों के द्वारा उसे अभियुक्त का चरित्र ज्ञात होता है और वह निरपराध सिद्ध होता है, उसके विपक्षियों को दंड मिलता है। कहानी का अन्त सुन्दर है। सुरभि मघ को बहुत दिनों से प्यार करती थी किन्तु उसे अपनाने में असमर्थ थी। मघ भी उससे विरक्त नहीं था। रानी ने इन दोनों का विवाह करा दिया।

अनघ के मूल मे सेवा भावना है। उसकी रचना का उद्देश्य इन पंक्तियों में निहित है—

न तन सेवा, न मन सेवा
न जीवन और धन सेवा।
मुझे है इष्ट जन सेवा,
सदा सच्ची भुवन सेवा॥

मघ सच्चरित्र पुरुष है। वह एक आदर्श है जिसे गुप्त जी ने समाज के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। सुरभि के निम्नलिखित वाक्यों में मघ का सम्पूर्ण चरित्र भरा पड़ा है—

संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है।
पर हित ही उनके प्रेम विजय का फल है।
लाभ व्रत ही विश्वस्त वर्म है उनका।
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका।

कवि ने प्रकृति का मनोहर वर्णन किया है। स्थान स्थान पर भावों की लपेट में भी प्रकृति का उत्तम चित्रण हुआ है। सुरभि उद्यान में मघ की प्रतीक्षा करती हुई गाती है—

उनको पाकर किस पुण्य कार्य ने
नये प्राण से पाये।

आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
साथी आज न आये।
यह सन्ध्या तप का सहज सुनहला
मुकुट बाँध वृक्षाली,
पथ देख रही है खड़ी सजाये
फल फूलों की डाली।
अम्बर की लाली पकड़ रही है
धरती की हरियाली,
संवाद ले रहा पवन कि अब तक
कहाँ रहे वन माली।
लो मेरे आगे अन्धकार ने
अब ये पैर जमाये।
आ पहुँचा समय परन्तु
समय के साथी आज न आये॥

'अनघ' में अनेक सुन्दर गीत हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में ही मघ गाता हुआ आता है और उसी गीत से उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। मघ का चरित्र उत्कृष्ट है। आज के समाज को भी उसी के समान किसी व्यक्ति की आवश्यकता है जो उसका उद्धार कर सके।

निराला : पंचवटी प्रसंग

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के 'परिमल' में पञ्चवटी-प्रसंग नामक गीति-नाट्य संगृहीत है। 'पञ्चवटी' की कथा तो प्राचीन काल से ही कवियों को प्रिय रही है।

पञ्चवटी में भगवान राम सीता जी के साथ बैठे थे। सीता जी पुष्प-

वाटिका की याद कर रही थीं जहाँ उन्होंने जीवन में सर्व प्रथम अपने पति का दर्शन किया था। प्रसंग उपस्थित होने पर राम ने सीता से प्रेम विषयक चर्चा प्रारंभ की। इसी समय लक्ष्मण भी वहीं आ गये और सीता जी की आज्ञा से वे शीघ्र ही वाटिका में पुष्प-चयन के लिये चले गये। थोड़ी ही देर में उस तपोभूमि में शूर्पनखा ने प्रवेश किया। वहाँ की प्राकृतिक छटा को देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ। तब तक लक्ष्मण भी राम के समीप आ गये थे। अकस्मात् दूर से ही राक्षसी ने इस मनोहर त्रयी को देख लिया। वह साँवले राम पर आसक्त हो गई, और उसने उनके समक्ष विवाह-प्रस्ताव रखा। निराश होने पर उसने लक्ष्मण से प्रार्थना की और राम को फटकारा भी। इसी समय राम के संकेत से लक्ष्मण ने उसकी नासिका और कान काट लिए। पञ्चवटी की यही कथा है जिसे कवि ने पाँच खण्डों में विभक्त किया है। इसमें केवल चार ही पात्र हैं—भगवान राम, सीता, लक्ष्मण और शूर्पनखा। निराला जी ने इस छोटे से कथानक में ही प्रेम, सेवा, प्रलय, भक्ति आदि की चर्चा का अवसर निकाल लिया है। साथ ही प्रकृति और नारी रूप की छटा भी प्रस्तुत की है।

कवि ने भगवान राम को ज्ञानमय देखा है। वे प्रेम, भक्ति और प्रलय की दार्शनिक विवेचना करते हैं और सीता जी को प्रेम के क्षेत्र में त्याग का महत्व भली भाँति समझाते हैं। प्रेम को किसी सीमित क्षेत्र में सुख नहीं मिल पाता, वह तो अपने प्रसार के निमित्त निस्सीम भूखण्ड की अपेक्षा रखता है। कुछ दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही इस प्रेमामृत को प्राप्त कर सकते हैं। अधिकांश तो इसकी प्रचण्ड ज्वाला से भयभीत होकर दूर भागते हैं।

प्रसंग वश राम ने लक्ष्मण को प्रलय का अर्थ बताया है। मन बुद्धि और अहंकार का लय ही प्रलय है। जब जिज्ञासु प्राणी माया के

बन्धन को तोड़ने के निमित्त मन बुद्धि और अहंकार से लड़ता हुआ विजयी हो जाता है, और सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन हो जाता है, तभी प्रलय होता है। उसी ब्रह्म की इच्छा से ही पुनः सृष्टि होती है। कवि ने भगवान राम की इस विवेचना के द्वारा अपने दर्शन बोध को स्पष्ट किया है।

यहाँ सीता जी की चरित्रगत विशेषताओं में स्वच्छन्द-जीवन-प्रेम को अधिक महत्त्व दिया जाता है—ऐसा जीवन जो कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में सत्संगति में बीते, यही सीता जी का अभीष्ट उन्हें पंचवटी में मिलता है। अयोध्या के जीवन से तपोवन के जीवन की तुलना करती हुई वे राम से कहती हैं—

मैं तो सोचती हूँ वहाँ वन्दिनी थी
और यहाँ खेलती हूँ मुक्त खेल
साथ हो तुम
और कहाँ इतना सुअवसर मुझे मिलता
और कहाँ पास बैठे देखती मैं
चंचल तरंगिनी की तरह तरंगों पर
सुर ललनाओं के चारु चरण चपल नृत्य

कवि ने लक्ष्मण को सेवा का प्रतीक माना है। उनका जीवन ही सेवा और भक्ति के आधार पर टिका था। उनका चिन्तन उनके स्वरूप को भली भाँति स्पष्ट कर देता है। वे भक्ति को मुक्ति से अधिक मानते थे। मानस-सरोवर के स्वच्छ वारि से विनिर्मित जलद जो अपनी सरस बूँदों से उसके वक्ष को सींचते हैं, उनके आदर्श थे। वे भी माता की तृप्ति पर अपने शरीर और मन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत थे। जिन आदि शक्ति रूपिणी माता की कृपा से उनकी सृष्टि हुई थी उन्हीं की

सेवा में उसे लगा देना वे उसका परम उपयोग मानते थे। कवि की यह सेवा-धर्म विवेचना स्तुत्य है।

तपोवन में प्रवेश करते ही रूप-गर्विता शूर्पनखा प्राकृतिक सौन्दर्य देख विमुग्ध हो गई। वह भी अतीन्द्रिय सौन्दर्य से युक्त थी—

देख यह कपोत कण्ठ
बाहु वल्ली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि
नितम्ब भार—चरण सुकुमार
गति मन्द मन्द
टूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।

प्रकृति में वह घुल मिल जाना चाहती है—

इच्छा होती है इन
सखी कलियों के संग
गाऊँ मैं अनूठे गीत प्रेम मतवाली हो
फूलों से खेलूँ खेल।

निराला जी की शूर्पनखा सहृदय है। वह रूप गर्विता होते हुये भी प्राकृतिक सौन्दर्य की सराहना करती है। भगवान राम के श्यामल-सरोज-कान्ति-स्वरूप को देखकर वह अपने गुप्त-धन प्रेम को सँभाल नहीं पाती और उनके अधर का मधुपान करती हुई सुख से रहना चाहती है। यह सब होते हुए भी वह विवेक-शून्य है इसीलिये राम और लक्ष्मण दोनों से प्रेम याचना करती है और विफल होने पर प्रतिशोध की धमकियाँ देती है।

पञ्चवटी प्रसंग में कवि ने प्राचीन कथानक को ही नवीन ढंग से सजाया है और कोई उलट फेर नहीं किया है। यह उचित भी है।

भगवान राम की कथा को गोस्वामी जी और अन्य कवियों ने कुछ इस प्रकार लोगों के हृदय में उतार रक्खा है कि उसका रंच मात्र विरूप होना भी असहनीय हो जाता है। भाषा, भाव, छन्द सभी दृष्टियों से यह गीति-नाट्य पूर्णतः सफल रचना है।

भगवतीचरण वर्मा : तारा

भगवतीचरण वर्मा के 'मधुकण' में 'तारा' शीर्षक एकांकी गीति नाट्य संगृहीत है। यौवन से पीड़ित शांति को पाने के लिये सचेष्ट तारा रात्रि में अपने पति वृहस्पति के शिष्य चन्द्रमा को देखती है। उसके उज्ज्वल सौन्दर्य को देखकर वह आकर्षित होती है और चन्द्रमा भी उस मनोज्ञ रूप की उपेक्षा नहीं कर पाता। दूसरे दिन गुरु वृहस्पति देशाटन को चले जाते हैं और चन्द्रमा तथा तारा मर्यादा से विमुख हो वासना की उपासना करने लगते हैं। देशाटन से लौटने पर मुनि को सब भेद प्रकट होता है। वे अत्यन्त खिन्न तथा क्रुद्ध होते हैं। अन्त में तारा वृहस्पति को मिल जाती है और पुत्र बुध को चन्द्रमा ले लेता है।

एकांकी गीतिनाट्य तारा की यही छोटी सी कथा है। तारा ही इसमें प्रधान पात्र है। कवि ने उसके व्यक्तित्व को कौशल के साथ निर्मित किया है। वह युवती है, उसका हृदय अधीर है; अतः वह शांति के लिये उत्सुक है। वृहस्पति उसके पति हैं परन्तु बुद्धि जीवी आध्यात्मिक वृत्ति समन्वित वृहस्पति उसकी श्रद्धा के पात्र हैं प्रेम के नहीं और यही उसकी अशांति का मूल कारण है।

तारा अपने यौवन को वश में करने की चेष्टा करती है किन्तु वैसा कर नहीं पाती। यद्यपि विवेक उसे समय समय पर सहारा देता रहता है तथापि यौवन का दुर्वह भार वह नहीं सँभाल पाती और तृष्णा व[illegible]

अपना सब कुछ खो देती है। बृहस्पति की अनुपस्थिति और चन्द्रमा का रूप उसके विचारों में उथल पुथल मचा देता है और वह युवती अपने पति के शिष्य के साथ ही वासनामय जीवन व्यतीत करने लगती है।

तारा अतिशय रूपवती है और उसे रूप राशि की चाह है और जब उसे अनुकूल परिस्थिति मे पा जाती है तब अंगीकार करने से झिझकती भी नहीं। चन्द्रमा के प्रथम दर्शन से वह आकृष्ट हो जाती है। वासना के प्रवाह में बहती हुई वह सुन्दरी विवेक के तिनके का सहारा भी छोड़ देती है और ऐसी दशा में उसका डूब जाना स्वाभाविक ही है। यहीं उसके चरित्र का पूर्ण पतन लक्षित होता है।

चन्द्रमा भी तारा को पहले पहल देखकर आकर्षित हो जाता है। यद्यपि वह उसे माता कहकर सम्बोधित करता है फिर भी उसका रूप लावण्य उसकी मनस्थिति को चंचल कर देता है और बृहस्पति की अनुपस्थिति को पाते ही वह तारा को पतन के मार्ग पर ले चलने में नहीं चूकता। वह पूर्ण कामुक है और मूर्खतावश श्रद्धास्पद गुरुपत्नी को प्रेम पात्र मान बैठता है।

चन्द्रमा वासना को पाप नहीं मानता और कामुकों की भाँति तर्क करता हुआ यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि वासनामय जीवन व्यतीत करने में पतन नहीं है। उसने व्यभिचार को प्रेम की संज्ञा दी है। वह तारा की लज्जा और विवेक को दूर हटा उसका सर्वस्व अपहरण करने में समर्थ होता है। विश्वासघाती, विवेकशून्य, कामुक चन्द्रमा का चरित्र इस एकांकी में सफलता के साथ चित्रित हुआ है।

बृहस्पति देवताओं के गुरु और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने वासना और पाप की अनेक बार तारा और चन्द्रमा के समक्ष विवेचना

की है; परन्तु उन दोनों पर उसका कोई भी प्रभाव नहीं रह पाता। वे तारा से कहते हैं—

'है प्राधान्य वासना का, यह वासना
इस जीवन के अधःपतन का मूल है।
है, कर्तव्य दमन इसका यह विजय ही
है बलिदान, विजित होना ही भूल है।'

चन्द्रमा को भी उन्होंने यही समझाया था कि जीवन वासना-प्रधान है। उसकी तृप्ति हमारा कर्तव्य है, लेकिन तृप्ति का अनुचित साधन ही पाप है; जहाँ वासना रहती है वहाँ शांति टिक नहीं सकती।

बुद्धि-सम्पन्न बृहस्पति भी नारी हृदय को नहीं जान पाते और न तो यही समझ पाते हैं कि चन्द्रमा जैसे विश्वासघाती भी सृष्टि में निवास करते हैं। इसीलिये वे चंद्रमा और तारा के संयोगमार्ग को प्रशस्त करते दिखाई देते हैं। इनके जीवन की यह महान् भूल थी।

भगवतीचरण जी ने बृहस्पति को तपस्वी, देवगुरु, ज्ञानी के रूप में चित्रित किया है। तारा के जीवन की हलचल को कवि ने कौशल से चित्रित किया है। भाषा और छन्द भावों के अनुकूल हैं।

उदयशंकर भट्ट : तीन भाव-नाट्य

गीति नाट्य के क्षेत्र में उदयशंकर जी भट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगंधा' और 'राधा' नाम के तीन भाव-नाट्यों की रचना की है। भाव-नाट्यों की इस मनोहर त्रयी के लिये भट्ट जी सबकी प्रशंसा के पात्र हैं।

विश्वामित्र का तप तो प्रसिद्ध ही है। कवि ने उसी तपस्या की कथा को लेकर इस गीति-नाट्य की रचना की है। हिमालय के रम्य प्रदेश में विश्वामित्र जी तपस्या कर रहे थे। कठिन तपश्चर्या के फल-

स्वरूप वे अत्यन्त क्षीण हो गये थे। उसी समय उर्वशी और मेनका विचरण करती हुई वहाँ पहुँच गईं। उर्वशी तो इन्द्रलोक को चली गई; परन्तु मेनका ने कौतूहल-वश ऋषि को वश में करने का प्रयत्न प्रारंभ किया। उसने सहायता के निमित्त यौवन, वसंत और अनंग का आवाहन किया। सम्पूर्ण सृष्टि अनुरागमय हो उठी और ऋषि की आँखे खुल गईं। उन्होंने मेनका को देखा, देखते ही मुग्ध हो गये और पुनः समाधि लगाने की चेष्टा करने लगे। तपस्वी ऋषि विश्वामित्र भी उस अप्सरा की माया से न बच सके और उनका मोह प्रबल ही होता गया। उन्होने मेनका को भुजपाशों में बाँधने को इच्छा की; परन्तु वह लुप्त हो गई। ऋषि को वियोग अत्यन्त कष्टप्रद हुआ, वे प्रलाप करने लगे, मूर्च्छित हो गये और अंत में उन्होंने जीवन का अंत कर देना ही निश्चित किया। इसी समय मेनका प्रकट हो गई और उसने ऋषिराज को गूढ़ालिंगन में बाँध लिया। दोनों पति-पत्नी की भाँति रहने लगे। विश्वामित्र को तपश्चर्या भूल गई और मेनका को इन्द्रलोक। इसी बीच एक सुन्दरी कन्या का भी जन्म हुआ जिसे पाकर दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हुये। बारह वर्षों के उपरांत उर्वशी मेनका से मिलने आई। तब तक ऋषि को भी अपनी भूल विदित हो चुकी थी। मेनका तो प्रकृति से ही स्वतन्त्रता प्रिय थी; अतः वह सबको छोड़कर अकेली इन्द्रलोक को चली गई और ज्ञान की उत्पत्ति के फलस्वरूप ऋषि भी कन्या शकुन्तला को छोड़ तप करने के लिये निकल गये।

विश्वामित्र की यही छोटी सी कथा है जिसमें कथागत सौंदर्य की खोज भी अनुचित ही है, क्योंकि गीति-नाट्यों का सौंदर्य पात्रों के भाव-संघर्ष में ही निहित रहता है।

यहाँ पात्र भी केवल चार हो मिलते हैं। इनमें विश्वामित्र और मेनका का अधिक महत्व है।

उर्वशी तथा शकुन्तला और दो अन्य पात्र हैं। गीति-नाट्यों का सौन्दर्य पात्रों की मानसिक उथल-पुथल में है। सीधी-सादी कथा और चार पात्रों से युक्त इस गीत नाट्य के सात खंड किये गये हैं और हिमालय के रम्य प्रदेश को कार्यभूमि के लिये ग्रहण किया गया है।

भट्ट जी ने अत्यन्त चातुरी के साथ विश्वामित्र का चरित्र चित्रित किया है। उनका भीषण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व कलात्मक अभिव्यक्ति पा सका है। शक्ति और परम पुरुषार्थ के प्रतीक महामुनि विश्वामित्र अपने तपोबल की परम शक्ति से पूर्ण अवगत थे, उन्हें अपनी तपश्चर्या पर पूर्ण विश्वास था और उसी के आधार पर वे नूतन सृष्टि निर्माण की क्षमता रखते थे परन्तु ज्यों ही उन्होंने मनोहर प्राकृतिक वातावरण के बीच परम रूपमयी मेनका का दर्शन किया, उनका मन चंचल हो उठा। वे बोले—

'अरे अरे तुम कौन मौन मृदु कल्पना
विधि की, हरि की, सुरपति की या प्रकृति की?'

यद्यपि उन्होंने एक बार सम्पूर्ण शक्ति जुटा कर समाधि लगाने की चेष्टा की; परन्तु असफलता ही हाथ लगी। उनका मोह प्रबल होता गया। वे नारी को ही जीवन का सत्य मान बैठे। इसे उन्होंने कह भी दिया—

'सब प्रपंच अध्यात्म एक तुम सत्य हो।'

मोह के इस गहन अंधकार में वे अपने को भी नहीं पहचान सके और तापस से रसिक बन गये—

'तापस छिः मैं नहीं रसिक हूँ रसिकवर॥'

वियोग-जन्य प्रलाप वर्णन में कवि ने विश्वामित्र से मृत्यु-कामना तक करा डाली है। किसी का दर्शन मात्र कामुकता को उद्दीप्त कर

सकता है, पर इसमें इतनी शक्ति कहाँ कि इसके प्रभाव से विश्वामित्र जैसे तपोधन मरने को तैयार हो जाय ? यह कहाँ तक उचित है कहा नहीं जा सकता। वियोग-प्रलाप के इस वृहत् रूप का आधार मेनका का एक दर्शन मात्र क्षीण प्रतीत होता है। बारह वर्षों तक मेनका के साथ गृहस्थों जैसा जीवन व्यतीत करने के उपरांत ऋषि फिर तप करने चले गये। मेनका तो कन्या शकुन्तला और ऋषि को छोड़ कर पहले ही इन्द्रलोक को जा चुकी थी। ऋषि को बोध हुआ कि वे पथभ्रष्ट हो गये हैं। बस उन्होंने अपने हृदय खण्ड को, उस निरपराधिनी मातृ-विहीना कन्या को वहीं बन में छोड़ दिया। यह व्यापार भी अनुचित प्रतीत होता है।

मेनका अनुरागिनी आनंदमयी अप्सरा है। नृत्य और गान दोनों उसे परमप्रिय हैं। उसे भ्रमण करने में आनन्द मिलता है। उर्वशी से बातें करती हुई वह कहती है—

'यह सब कुछ भी नहीं जानती मैं यही
हृदय, प्रेम, आनन्द हमारी सृष्टि है
क्षण क्षण निर्मित होता है अनुराग यह
और व्याघ्र सा काल लीलता है जगत।'

उसके तीनों गीत प्रणयमय हैं—सचमुच वह प्रणय की पहेली है।

मेनका नर की दुर्बलताओं से अवगत थी और उस पर विजय पाने की कला में पूर्ण प्रवीण थी। जानती थी कि मानव अहंकार-प्रधान जीव है और अपने स्वार्थ के लिये जप-तप सब कुछ करता है। एक ही ठोकर में वह गिर जाता है और नारी के एक कटाक्षपात को भी झेलने की शक्ति उसमें नहीं होती।

किंतु नर के समीप नारी का परम आदरणीय स्थान है यह भी उसे ज्ञात था—

'मानव के नैराश्य पुज में दीप की
ज्योति-शिखा है नारी नर की चाहना।'

भट्ट जी ने मेनका को हृदय प्रधान नारी के रूप में चित्रित करने की चेष्टा की है और इसमें वे पूर्णतः सफल हुये हैं। अंत में जाकर उसके चरित्र में एक भयानक दोष लक्षित होता है। वह शकुन्तला को छोड़ कर इन्द्रलोक को चली जाती है, यह माता के लिये अक्षम्य अपराध है। मेनका आकर्षक प्रेयसी रही हो, पर उसके पास मातृ हृदय नहीं था।

उर्वशी बुद्धिवादिनी अप्सरा है जो नारी के अधिकारों के प्रति सर्वदा सचेष्ट है और नर से घृणा करती है। उसके हृदय में नर के प्रति दुर्भाव है। वह जानती थी कि नारी को नर ने अपने सुख का साधन बना रखा है। नर और नारी की इस एकता को वह अनुचित मानती थी, इसीलिये प्रारंभ में ही उसने मेनका और विश्वामित्र के संयोग में विघ्न डालने की चेष्टा की और बारह वर्षों के बाद दोनों का संबंध विच्छेद कराने में सफल भी हो गई।

'विश्वामित्र' में कवि ने प्रकृति का आकर्षक चित्रण किया है। उसके पात्र प्राकृतिक उपादानों में अपने सुख-दुख का भी दर्शन करते हैं। भावों की लपेट में प्रकृति का अत्यन्त रमणीय चित्रण हुआ है। विश्वामित्र ने गुलाब की पंखुरियों पर प्रेयसी की मुस्कान को अंकित देखा है।

भट्ट जी की कला पर भी छायावाद का पूर्ण प्रभाव है। उन्होंने स्थूल के लिये सूक्ष्म उपमानों की योजना है। मेनका के लुप्त हो जाने पर विश्वामित्र कहते हैं—

'चली गई विस्मृति, अतीत सी, त्याग सी,
पल सी, घटिका, दिवस रात्रि सी, वर्ष सी,
युग सी, जीवन सी, बेला सी, प्रगति सी—'

इस गीति नाट्य की भाषा भावों के अनुरूप है। थोड़े अनुचित शब्द भी आ गये हैं जैसे 'लीलता' 'अनेकों' इत्यादि। 'विश्वामित्र' एक सफल गीति-नाट्य है।

'मत्स्यगंधा' भी अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसकी कथा साधारण सी है। मत्स्यगंधा रूपवती धीवर-बाला है। बड़ी होने पर उसे अनंग-देव का दर्शन होता है और पराशर ऋषि से वह अनंत यौवन का वरदान पाती है। कुछ दिनों के अनन्तर वही शांतनु की पत्नी सत्यवती बनती है और वैधव्य का करुण दुख भोगती है।

इस भाव-नाट्य में सब मिलाकर चार ही पात्र हैं मत्स्यगंधा, उसकी सखी सुभ्रु, अनंग और पराशर ऋषि। दृश्य भी केवल छह है। पहले दृश्य में मत्स्यगंधा अपनी सखी सुभ्रु के साथ नदी तट के उपवन में पुष्प चयन कर रही है। दूसरे दृश्य में वह प्रदोष के समय नाव के पास एक हाथ में डाँड़ लिये खड़ी है। तीसरा दृश्य सूर्यास्त के समय का है। नाव में पराशर ऋषि बैठें हैं और मत्स्यगंधा नाव चला रही है। चौथे दृश्य में वह एकाकिनी नदी-तट पर घूमती मिलती है, पाँचवें दृश्य में सत्यवती के रूप में उद्यान में दिखाई देती है और अंतिम दृश्य में वैधव्य को प्राप्त होकर प्रासाद के शिखर पर खड़ी है। इन सभी दृश्यों में प्रकृति का मनोहर रूप विराजमान है। कहीं उपवन का वर्णन है, तो कहीं नदी तट का। समय भी बड़ा सुन्दर है संध्या का, सूर्यास्त का और प्रदोष का।

माधवी की, यूथिका की मंजु श्री-पुष्प राशि
मद के चषक से उड़ेलती प्रभूत पूत
शोभित बनान्त में निशा का मुख खोल खोल
देख अरी, देखा कैसा सुन्दर महान सब।

यौवनागम का दृश्य देखिये :—

जान कहाँ पाई सखि, खोजती पलक डाल
हृदय बिछाये हुये उसको न जाने कौन
स्वप्न सा समाया और विस्मृति विद्ध मन
यौवन की छाया एक सिहरन भर गया—

यौवन की यह छटा मत्स्यगंधा को अत्यन्त प्रिय है। वह अपनी ही मादकता को सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त देखती है और उसका जीवन प्रकृति से अभिन्न प्रतीत होता है।

वैधव्य को प्राप्त होते ही उसके सभी भाव विलुप्त हो जाते हैं और वह भावों के प्रलय के बीच पराजित होकर क्रन्दन करने लगती है—

मेरा स्वर्ग हीन हुआ हाय पुण्य पाप बना
आशा औ उमंग हुई भार हैं अनन्त की।

❀ ❀ ❀

भूली नाथ भूली नाथ ले लो यह वरदान
लौटाओ लौटाओ प्रभु क्षण भी युगांत है।
यौवन का वेग ऐसा प्राण हीन देखा कब॥

उसके अनंत यौवन का वरदान अभिशाप और जीवन का मधु हालाहल बन जाता है। इस भाव-नाट्य में संस्कृत के शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं और हिन्दी के सरल शब्द भी।

'राधा' तीसरा गीति-रूपक है। कवि ने यहाँ युग के अनुसार कृष्ण को अधिक कर्तव्य परायण और अपेक्षाकृत कम प्रेम परायण दिखाया है।

'राधा' का कथानक सीधा सा है। राधा कृष्ण को चाहती है और उनकी प्रतीक्षा कर रही है। उसका मन क्षुब्ध है। इसी समय उसकी सखी विशाखा आती है और राधा उससे अपनी उदासी का कारण प्रकट

करती है। विशाखा भी राधा से अपने दुखों का निवेदन करती है। वह भी कृष्ण को प्रेम करती थी। किसी चाँदनी रात में कृष्ण यमुना तट पर वंशी बजाते हैं और सभी सखियाँ वहाँ पहुँच कर नाचने गाने लगती हैं। फिर किसी दिन कुंज में कृष्ण की प्रतीक्षा में राधा बैठी रहती है। वे वहाँ आते हैं और उनके मथुरा जाने की बात को सुनकर राधा मूर्च्छित हो जाती है। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और विरहिणी राधा तपस्विनी हो जाती है। उसके अनन्य प्रेम को देखकर कृष्ण प्रकट होते हैं। उसे भेंटते हैं दोनों की सत्ता एक हो जाती है।

इस नाटक में राधा, कृष्ण, विशाखा, नारद चन्द्रावली-बस इतने ही पात्र हैं। दृश्य भी केवल चार ही हैं। यमुना तट के कुंज में अपार प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है और वहीं सब कार्य सम्पादित होते हैं।

इस गीतिनाट्य में नारी हृदय का अनूठा वर्णन वर्तमान है। राधा का कृष्ण के प्रति अपार प्रेम है और उसके हृदय की विवशता का पद-पद पर दर्शन होता है। दूसरे दृश्य में चाँदनी रात्रि में यमुना तट पर वंशी बजती है। राधा दौड़ी दौड़ी आती है और कृष्ण के सामने खड़ी हो जाती है; उसकी यह दशा प्रेम ने ही की है; अतएव वह कृष्ण से उसका निवेदन भी करती है।

राधा और विशाखा की विवाह विषयक बातें आधुनिक विचारों से सम्पन्न हैं। यह स्वतंत्रता की आकांक्षा आधुनिक नारी की चाहना है। इस विषय पर दोनों सखियाँ कृष्ण की सम्मति चाहती हैं और यह सब उस प्रेम की भूमिका सा लगता है जो इनके हृदय में तरंगायित है।

राधा का प्रेम कृष्ण के प्रति कितना प्रगाढ़ था यह भी राधा और नारद की बातों से स्पष्ट हो जाता है। तपस्विनी राधा की यही अनन्यता कृष्ण को प्रकट होने के लिये प्रेरित करती है और दोनों एकाकार हो जाते हैं।

ब्रज की सभी स्त्रियाँ कृष्ण से प्रेम करती थीं और वंशी की ध्वनि का आकर्षण सब को विवश कर देता था; इसी से उसे सुनते ही वे कहीं भी किसी समय चली जाती थीं। यह नारी हृदय की विवशता नहीं तो और क्या है?

कवि ने कृष्ण के स्वरूप में अपेक्षित परिवर्तन किया है। वे प्रेम का वासना विहीन स्वरूप उपस्थित करना चाहते हैं यही उनका आदर्श है। प्रकृति को उन्होंने उद्दीपन का उपकरण नहीं माना है। हरित भूधर, पूर्णशशि, उत्तुंगमाली अतल सागर उन्हें विषय-वाहक नहीं प्रतीत होते; इनका एक स्वतंत्र सन्देश उन्हें सुनाई पड़ता है।

कृष्ण का यह नवीन स्वरूप कहीं-कहीं खटकने भी लगता है। राधा कृष्ण के लिये प्राण दे रही है और वे कोरे तर्कों से उसे सन्तुष्ट करना चाहते हैं।

'राधा' में प्रकृति का अनन्त वैभव बिखरा पड़ा है। यमुना का रम्य तट, ज्योत्स्नामयी रजनी और नदी का प्रवाह सभी वर्तमान हैं। कहीं-कहीं मानवीय भावों का आरोप करते हुये प्रकृति चित्रण किया गया है—

'उठ रही घन घोर काली व्यालिनी बदली मनोहर
एक पुञ्जीभूत दुख सी मूर्ति सी नैराश्य की बन
छीनती सी हृदय का सब स्वच्छ सुख कादम्ब मेरा।'

चौथे अंक के प्रारंभ का गीत अत्यन्त मार्मिक है। राधा की वेदना, आशा और आहत प्राण सभी इसमें दिखाई देते हैं। मूर्च्छित राधा को देखकर आर्द्र हृदय से नारद मुनि ने भी गीत-गोविन्द का एक मार्मिक पद गाया है।

उपसंहार

बीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप कलाकार के व्यक्तित्व को प्रधानता प्राप्त हुई है। निबंध, छोटी कहानियाँ, गद्यगीत और गीत सब ऐसी ही रचनायें हैं जिनमें कवि की अभिरुचि की विशेषता लक्षित होती है; अतएव आधुनिक गीतों को पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न मानने में किसी प्रकार के संकोच की आवश्यकता नहीं।

अंग्रेजी 'लीरिक' की भाँति. हिन्दी गीत के भी अनेक प्रकार हैं जिनमें वीरगीत, शोकगीति, संबोधगीति. चतुर्दशपदी, व्यंग्य गीत, प्रेम-गीत, उपालम्भ गीत, रूपक गीत, गीतिनाट्य, चित्रपट के गीत आदि प्रमुख हैं। यत्र तत्र कुछ भक्ति विषयक पद भी दिखाई पड़ जाते है जो प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुरूप हैं। वीरगीत, शोकगीति, संबोधगीति और चतुर्दशपदी क्रमशः अँग्रेजी के 'बैलेड', 'एलेजी', 'ओड' और 'सानेट' के ही रूप हैं।

आज सिनेमा गीतों का अधिक प्रचार हो रहा है। हिन्दी के अनेक कलाकार इनकी रचना में लीन हैं। फिर भी इनमें नैतिकता पतनोन्मुख प्रतीत होती है। इनको गीतों की अपेक्षा गाना कहना अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होगा। अधिकांश गीतों की भाषा भ्रष्ट होती है और भाव वासना के कीटाणुओं से पूर्ण। प्रेम का इतना अधिक काल्पनिक चित्र और हृदय की इतनी सस्ती भावुकता अन्य प्रकार के

गीतों में नहीं दिखाई पड़ती। वाद्य यंत्रों की विविध ध्वनि तथा कंठ की विचित्र माधुरी से इन दुर्बलताओं को छिपाने का प्रयास किया जाता है। इस समय हिन्दी और उर्दू के अनेक प्रतिष्ठित कवि चित्रपट के गीत लिखते हैं और अनेक ऐसे कवि हैं जो इन सिनेमा गीत लेखकों के ढंग पर ही गीतो की रचना करते हैं। ऐसी दशा में जब कि चित्रपट के गीतों के संगीत और भावों का साहित्य में भी प्रभाव पड़ रहा है उनका वासना और कुरुचि से दूर हटकर जीवन के अधिक समीप आना कितना आवश्यक है। प्रदीप जो, भगवतीचरण वर्मा, गोपालसिंह नैपाली, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, पं० इन्द्र, ब्रजेन्द्र गौड़, नीलकंठ तिवारी, भरत व्यास आदि हिन्दी कवियों के अतिरिक्त उर्दू के अनेक शायर जैसे जोश मलीहाबादी, कमर जलालाबादी, अर्श लखनवी, सिनेमा गीत लिखते हैं। इनके गीत भी अधिकांश प्रणय संबंधी होते हैं। आज के कलाकार को यह विशेष रूप से देखना है कि हिन्दी गीतों की पवित्रता और मर्यादा चित्रलोक में भी पहले जैसी ही बनी रहे। आधुनिक महाकाव्यों में गीतों का समावेश रहता है; परन्तु नाटकों से उन्हें निकाल दिया गया है। लोक गीतों के विभिन्न प्रकार उचित अवसरों पर सुने जा सकते हैं।

आज के गीत राष्ट्रीयता, मानवता, करुणा, सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति आदि से संबंधित हैं फिर भी इनमें प्रेम और प्रकृति की ही प्रधानता है। प्राकृतिक वातावरण से गीतों को मनोहर रंग तथा अनुकूल चित्रों की प्राप्ति होती है और प्रेम के योग से भावों की प्रबलता बनी रहती है। कल्पना की छाया में पले ये गीत अत्यन्त कोमल होते हैं और इनमें स्वर की अत्यधिक मिठास वर्तमान रहती है। इनमें अनेक प्रकार का संगीत उपलब्ध होता है। यहाँ छायावाद का सौन्दर्य मोह, प्रेमासक्ति, कल्पना प्रियता, निराशा, करुणा और प्राकृतिक पीठिका आज भी

ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। कुछ गीत ईशभक्ति और देशभक्ति से भी युक्त हैं। अनेक सुधारकों ने भी समाज सुधार के लिये गीतों का सहारा लिया है।

आधुनिक युग के कितने ही प्रसिद्ध कथा लेखक, नाटककार, समालोचक सफल गीति-लेखक हैं। ये कभी गीत लिखते हैं तो कभी वर्णनात्मक कवितायें और प्रबन्धकाव्य। स्वर्गीय बाबू जयशङ्कर प्रसाद, पंत जी, निराला जी, श्रीमती महादेवी वर्मा और डाक्टर रामकुमार जी छायावाद युग के प्रधान गीत लेखक हैं; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इन्होंने केवल गीत ही लिखे हैं, दूसरे प्रकार की रचनायें की ही नहीं। यही दशा अन्य गीत लेखकों की भी है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ होते ही यूरोप तथा फारस के अनेक मत हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित होने लगे और गीत साहित्य इनसे अछूता न रह सका। अनेक गीतिकारों ने भारतीय दर्शन को भी अपनाया।

'प्रसाद' जी के गीतों में वेदना का प्राधान्य है साथ ही एक मादक विशेषता भी। पंत जी के गीत सदैव कल्पना के साथ प्रकृति में विचरते हैं। निराला जी के गीत जीवन के समीप और वेदान्त से संबंधित हैं। महादेवी जी रहस्यमयी हैं और इनकी पीड़ा का क्रमिक विकास हुआ है। रामकुमार जी में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण तथा निराशा है और भगवतीचरण जी के गीत इन्द्रियाकर्षण (Sensuousness) से युक्त हैं। 'बच्चन' जी फारसी मत से प्रभावित हैं। इसी प्रकार अनेक गीतिकार क्रान्ति, प्रगतिवाद, समाजवाद आदि से सहानुभूति रखते हैं। कितनों ने निराली प्रतीक पद्धति को अपनाया है। क्रोसे के अभिव्यंजनावाद का भी गीतों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप इनमें अनेक अप्रस्तुतों का आरोप हुआ है। प्रतीकों का प्रयोग तथा उक्ति वैचित्र्य भी इसी का परिणाम है

आधुनिक गीतों में संगीत की नवीन योजना पाई जाती है जो प्राचीन काल के पदों से भिन्न है। निराला जी भारतीय संगीत के प्रेमी हैं और पंत जी तथा महादेवी ने अपनी रुचि के अनुकूल नवीन संगीत योजना की है। अनेक कलाकारों ने बँगला और अंग्रेजी संगीत का अनुकरण किया है। टैगोर की गीतांजलि तथा वर्ड्सवर्थ और शैली की रचनाओं ने अनेक कवियों को प्रभावित किया है। सिनेमा के गीतों में एक विचित्र संगीत रहता है और कभी कभी अनेक पंक्तियाँ त्रुटि पूर्ण रह जाती हैं।

भक्ति काल के पद छः या आठ पंक्तियों के होते थे। आरंभ की पंक्ति कुछ छोटी होती थी जिसे टेक कहते थे। इसको कई बार पढ़ना पड़ता था। पद के अंत में कवि का नाम रहता था। यों तो मैथिलीशरण जी के गीतों में भी टेक रहती है; परन्तु गीति-रचना के निमित्त आज यह ढंग अपेक्षित नहीं है और पंक्तियों की भी संख्या निश्चित नहीं है। पंत जी और निराला जी के गीत पंक्ति बंधन से परे हैं। बच्चन जी के अनुकरण पर कुछ दिनों तक तीन बंध वाले गीतों की धूम रही। गीतों में अनेक बंध होते हैं और प्रत्येक पंक्ति का एक मान (measure) होता है। संगीत पंक्तियों के आधार पर न चलकर बंध के आधार पर चलता है ये बंध बहुधा चार पंक्तियों के होते हैं।

आज की गीति-कविता स्वतंत्र ढंग से चल रही है। वह एक ओर पदों से भिन्न है और दूसरी ओर लीरिक से। इसका आधार संगीत है। वीरगाथा काल में ओजप्रधान छन्दों की धूम थी, भक्ति काल में पदों का साम्राज्य था, रीतिकाल में कवित्त सवैयो का विशेष प्रयोग होता था और आज गीतों का अधिक प्रचार हो रहा है। इन्हें सिनेमा में उचित स्थान मिल चुका है। समाज में भी उत्सवों तथा अन्य अवसरों पर गीत-पाठ चला ही आ रहा है। कवि सम्मेलनों को सफल बनाने के लिये

गीत अत्यन्त आवश्यक हैं; अतः इनके प्रचार की बड़ी संभावना है और इनका भविष्य सुन्दर दिखाई देता है। गीतों से काव्य तथा संगीत दोनों का ही विकास सुलभ है। आज का गीत लेखक केवल कवि ही नहीं, संगीतज्ञ भी होता है।

गीतों के अधिक प्रचार से साहित्य को भय भी है, क्योंकि इनकी रचना प्रबंध निर्माण के लिये घातक है। इसीलिये आधुनिक काल में केवल थोड़े से महाकाव्य लिखे जा सके। गीतों के लिये अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं हैं; इसी से इनका बाहुल्य है। प्रबंध रचना के निमित्त अधिक क्षमता आवश्यक है; फलतः लोग इससे दूर भाग रहे हैं। फिर भी गीतों का प्रचार यदि उचित सीमा में हो, तो उससे साहित्य की श्री-वृद्धि ही होगी।